संस्कृत प्रचार पुस्तक माला सं० ५५

हास्य-विनोद-कथा-संग्रह

संस्कृत साहित्य के विविध गद्य-पद्यमय ग्रन्थों से
संकलित हास्य-विनोद-पूर्ण कथाओं का
सानुवाद संग्रह



सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्
वाराणसी

संस्कृत प्रचार पुस्तक माला सं० ५५

हास्य-विनोद-कथा-संग्रह

संस्कृत साहित्य के विविध गद्य-पद्यमय ग्रन्थों से

संकलित हास्य-विनोद-पूर्ण कथाओं का

सानुवाद संग्रह

संकलनकर्ता

वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

(सम्पादक—संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला)

सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्

वाराणसी

प्रकाशक :

सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्

डी० ३८/११० हौजकटोरा, वाराणसी

आवृत्ति : प्रथम

संख्या : एक हजार

मूल्य : १५ रुपये

मुद्रक :

सुदर्शन मुद्रक

४२, उत्तर बेनिया बाग,

वाराणसी-२२१००१

पुस्तक के सम्बन्धमें

दो शब्द

संस्कृत भाषा के विशाल वैदिक, बौद्ध एवं जैन कथासाहित्यमें धर्म एवं नीतिविषयक कथाओं के अतिरिक्त जो असंख्य हास्य-विनोदसम्बन्धी कथायें भरी पड़ी हुई हैं उन्हें प्रकाशित करना संस्थानम् का एक प्रमुख लक्ष्य है। तदनुसार ही संस्थानम् द्वारा बालकों के लिये बालविनोदमाला तथा प्रौढों के लिए हास्यविनोद-वाटिका नामकी दो पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं जिनमें क्रमशः हास्य, व्यङ्ग्य एवं विनोद सम्बन्धी ३० तथा १९२ श्लोकों का सानुवाद संकलन किया गया है। आज उसी क्रम में यह तीसरी पुस्तक प्रकाशित की जा रही है जिसमें गद्य एवं पद्यमय कथाओं का संग्रह किया गया है। ये कथायें जिन पुस्तकों से संगृहीत की गई हैं उनकी नामावली एवं परिचय निम्नलिखित है—

१—प्रबन्धपञ्चशती—जैनविद्वान श्री शुभशीलगणि विरचित।

२—कथासरित्सागर—श्री सोमदेव भट्ट विरचित।

३—नीतिकल्पतरु—व्यासदास क्षेमेन्द्र विरचित।

४—पुरुषपरीक्षा—मैथिलकवि विद्यापति विरचित।

५—भरटकद्वात्रिंशिका—लेखक का नाम अज्ञात है। जे० हार्टल द्वारा २९२१ ई० में लाईपजिग, जर्मनी से प्रकाशित।

कथाओं का विवरण इस प्रकार है—

आरंभ में ५१ गद्य कथायें हैं जिनमें केवल एक पचासवीं कथा पुरुषपरीक्षा से ली गई है। शेष समस्त कथायें प्रबन्ध पञ्चशती से ही संकलित की गई हैं। गद्यमय कथाओं के बाद ४२ पद्यमय कथायें हैं। इनमें केवल १० वीं और ११ वीं कथायें नीतिकल्पतरु से ली गई हैं पर शेष सभी कथायें कथासरित्सागर के शक्तियशोनामक लम्बक के विभिन्न तरङ्गों से संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त परिशिष्ट में जो कथायें दी गई हैं वे सभी भरटक-द्वात्रिंशिका की हैं।

अपने ढंग की यह प्रथम पुस्तक है इसलिये नमूने के रूप में छोटी ही प्रकाशित की गई है। इसके गुण-दोषों का अनुभव हो जाने के बाद ऐसी कथाओं के अन्य संग्रह भी प्रकाशित किये जायेगें।

प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद यथासंभव सावधानी से किया गया है फिर भी पाठकों को कहीं-कहीं अटपटा-सा लग सकता है। क्योंकि इस पुस्तक का उद्देश्य केवल लोगों का मनोरंजन करना नहीं अपितु मनोरंजन के माध्यम से संस्कृत सिखाना भी है। अतः इसमें संस्कृत के अनुरूप ही हिन्दी लिखी गई है जिससे कि छात्र हिन्दी से मिलाकर संस्कृत के पदों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। पर ऐसा करने में कहीं-कहीं हिन्दी का स्वरूप बिगड़ गया है। उदाहरणार्थ संस्कृत के कर्मवाच्च वाक्यों का बहुत जगह हिन्दी में भी कर्मवाच्य में ही अनुवाद करना पड़ा है जो अच्छा नहीं लगता। अनुवाद की दूसरी कमी यह है कि कहीं-कहीं संस्कृत के अतिसंक्षिप्त वाक्यों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये हिन्दी के वाक्य लम्बे कर दिये गये हैं। ऐसे स्थलों पर छात्रों को हिन्दी के अनुरूप संस्कृत नहीं मिलेगी जिसके कारण छात्रों को कुछ कठिनाई हो सकती है। ऐसी कठिनाइयाँ तब नहीं होतीं जब नई संस्कृत में कथायें लिखी गई होतीं। पर इस पुस्तकके प्रकाशनका लक्ष्य मूल ग्रन्थों में प्रयुक्त संस्कृत का भी पाठकों को परिचय कराना था। अतः इन कठिनाइयों की संभावना को मानते हुए ही यह अनुवाद किया गया है। आशा है, प्रबुद्ध पाठक इस विवशता के लिये अनुवादकों को क्षमा करेगें।

संस्कृत की गद्यकथाओं में अनेक प्राकृत तथा देशी शब्द भी प्रयुक्त मिलते हैं। अनेक संस्कृत शब्द व्याकरण के नियमों के विरुद्ध भी प्रयुक्त हुए हैं। कुछ पद ऐसे भी मिले हैं जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं है। ऐसे स्थलों पर टिप्पणी में इसे स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

अन्त में मूल संस्कृत का अनुवाद करने, आवश्यक स्थलों पर टिप्पणी देने और कहीं-कहीं क्लिष्ट श्लोकों के अर्थों को समझने में हमारे निकटवर्ती सहयोगी साहित्याचार्य श्री पं० विद्याधर द्विवेदी एम० ए० तथा श्री नर्मदेश्वर त्रिपाठी साहित्याचार्य, एम० ए० ने जो हमारी सहायता की है उसके लिये हम इन दोनों सहयोगियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता और आभार प्रगट करते हैं।

दीपावली २०४२ वि०
१२।११।१९८५ ई०

विनीत
संकलनकर्ता

विषय-सूची

१—गद्यभाग की कथायें

२—पद्यभाग की कथायें

३—परिशिष्टभाग की कथायें

गद्यभागः

१. स्त्रियः मिथ्यागर्वसम्बन्धे कथा

कापि स्त्री कस्या अपि गलश्रियं मार्गयित्वा स्वगले क्षिप्त्वा कस्यापि गृहे जेमना[1]यागता। इतो गलश्रीस्वामिनी तत्रागता स्फारान् स्फारान् कवलांस्त्वरितं मुखे प्रक्षिपन्तीं सखीं दृष्ट्वोवाच—लघवः लघवः कवला ध्रियन्ताम्, अतो मम गलश्रीस्त्रुटिष्यति। तयोक्तं—यदि ते धनमस्ति तदा छोटव्यतां[2] गलश्रीः। ततः सा लज्जिता।

२. शृगालस्य लौल्यसम्बन्धे कथा

एकस्मिन् नदीतटे हुडुयुगं युद्धं कर्तुं लग्नम्। अथ रोषेण हुडुयुगं दूरमपसृत्यापसृत्य भूयोऽपि समेत्य ललाट-पट्टाभ्यां मिथः प्रहरति स्म। तयोर्ललाटयोः रुधिरं निर्गच्छद्-भूत्। इतस्तत्रैको जम्बूकः समागात्। स च लौल्याद् रुधिरधारां पतन्तीं वीक्ष्य द्वयोरन्तरे प्रविश्य रुधिरं पिबति स्म। अथ तयोः शिरःसम्पाते मध्यगतो जम्बूको मृतः। अतो द्वयोः कलिं कुर्वाणयोरन्तरे न प्रवेष्टव्यं जम्बूकवत्।

---

१. भोजन के अर्थ में जिमी धातु है।

२. मोच्यताम् के अर्थ में यहाँ देशी शब्द का प्रयोग है।

१. एक स्त्री के मिथ्या गर्व के सम्बन्ध में कथा

कोई स्त्री किसी स्त्री का हार मँगनी माँग कर और अपने गले में डालकर किसी के घर भोजन करने आयी। इधर हार की स्वामिनी भी वहाँ आ गयी और सखी को मुँह में बड़े-बड़े कौर जल्दी-जल्दी डालती हुई देखकर बोली—अरी, छोटे-छोटे कौर डालो। इस प्रकार (बड़े-बड़े कौर डालने से) तो हमारा हार टूट जायगा। इस पर उसने कहा—यदि तुम्हारे पास रुपये हैं तो (हमारे रुपये देकर) अपना हार छुड़ा लो। तब वह (अपने ही ऊपर आरोप लगता देखकर) स्वयं ही लज्जित हो गयी।

२. शृगाल की लोलुपता के सम्बन्ध में कथा

एक नदी के किनारे दो भेड़ लड़ रहे थे। क्रोध से दोनों भेड दूर हट-हट करके पुनः एकत्र होकर मस्तकों से एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। उन दोनों के मस्तक से रुधिर निकलने लगा। इसी बीच वहाँ एक शृगाल आ पहुँचा और वह बहती हुई रुधिर की धारा को देखकर लोभ में दोनों के बीच में घुसकर रुधिर पीने लगा। इसके बाद उन दोनों के मस्तक के प्रहार के बीच में पड़कर शृगाल मर गया। अतः जब दो लोग कलह कर रहे हों तो बीच में शृगाल की तरह नहीं घुसना चाहिए।

३. शकटालमन्त्रिणः विवेकसम्बन्धे कथा

एकदा कोऽपि भूपो विचक्षणो नन्दपार्श्वे यष्टिकां पदकवृत्तां[1] विचणीमयां[2] सर्वत्र समां प्रेषयामास। ज्ञापयामास च अस्या यष्टिकाया वज्रखचिताया आदिं अन्तं ज्ञात्वा ज्ञापनीयम्। यदा केनापि न ज्ञातमादिः अन्तं च, ततो राज्ञा शकटालस्याग्रे प्रोक्तं—त्वां विनाःन कोऽप्यनयोर्निर्णयं करोति। ततो मन्त्री यष्टिकां जलेऽमुञ्चत्। यतो मूलं तत् ईषज्जले मग्नं भारात्। ततो राजा हृष्टस्तं मानयामास।

४. वस्तुनामगोपनसम्बन्धे वणिजः कथा

एको वणिक् क्रयाणकैः[3] शकटं भृत्वा पुरं प्रत्यचलत्। मार्गे शुल्किको मिलितः। तेन पृष्टं किमस्ति शकटे ?

वणिक्प्राह—खेरोभेरो[4]। शुल्किनोक्तं लिखितम्। पुनः पृष्टं किमस्ति ?

तेनोक्तम्—उलूंपेलु[5]। इति उक्ते बहुशो यदाऽपृच्छन्न तिष्ठति शुल्की तदा स स्पर्धकत्रयं[6] हस्ते मुमोच, न पुनर्वस्तुनो नाम जगौ श्रेष्ठी।

---

१. अर्थ अस्पष्ट है।

२. अर्थ स्पष्ट नहीं है।

३. देशी शब्द है।

४. निरर्थक देशी शब्द।

५. ,, ,, ,,।

६. सिक्काविशेष अर्थ में देशी शब्द।

३. शकटाल मन्त्री के विवेक के सम्बन्ध में कथा

एक बार किसी विद्वान् ने राजा नन्द के पास एक ऐसी छड़ी भेजी जो गोलाकार एवं नीचे-ऊपर सर्वत्र एक-समान थी। राजा ने यह सन्देश भी भेजा था कि यह छड़ी वज्र (हीरा) से मढ़ी गयी है और इसका कौन भाग नीचे का है और कौन भाग ऊपर का, इसे भी बताना है। परन्तु जब किसी को भी इसके नीचे और ऊपर के भाग का ज्ञान नहीं हुआ, तब राजा ने अपने मन्त्री शकटाल से कहा कि तुम्हारे बिना दूसरा कोई इसका निर्णय नहीं कर सकता। इसके बाद मन्त्री ने छड़ी को जल में छोड़ दिया जिससे नीचे का भाग भारी होने से थोड़ा जल में डूब गया और यह पता लग गया कि छड़ी का कौन-सा भाग नीचे का है और कौन-सा ऊपर का। तब राजा ने प्रसन्न होकर शकटाल का बहुत सम्मान किया।

४ वस्तुओं के नाम छिपाने के सम्बन्ध में व्यापारी की कथा

एक व्यापारी किराने (के सामान) से गाड़ी भर कर नगर की ओर जा रहा था। रास्ते में चुंगी वाला मिल गया। उसने (व्यापारी से) पूछा—गाड़ी में क्या है ?

व्यापारी ने कहा—खेरोझेरो। चुंगी वाले ने कही हुई बात लिख ली। फिर पूछा--और क्या है ?

उसने कहा---उलूं पेलु। ऐसा कहने पर भी जब चुंगी वाला अपने पूछने से बाज नहीं आया तब उस व्यापारी ने तीन सिक्कों को उसके हाथ में दे दिया, फिर भी सामान का नाम नहीं बतलाया।

५. छलभूपस्य कृपणत्वसम्बन्धे कथा

एकदा झाल्लोवाटिकाधिपश्छलराजा पूर्वं दानं न ददौ। मरणसमये दानेच्छाऽभूत्। पुत्राणामग्रे प्राह—मम एतासां गवां, एतेषां घोटकानाम्, एतेषां रथानां, [एतासां च] रमाणां दानेच्छाऽस्ति। तदा मन्त्र्यादिभिः पुत्रैश्च विमृष्टम्—असौ सर्वं राज्यं दास्यति। उत्तरमस्य दीयतेऽधुना—'मरणादनु सर्वं दास्यते'। एवं जल्पिते [जल्पिताः ते] भूभुजः पुत्राः किमपि न ददुः, स च मृतः। एवं यत् स्वहस्तेन प्रथमं दीयते, तदेवात्मीयं नान्यत्। मरणसमये हिता अपि पुत्रा विघटन्ते।

६. श्रेष्ठिपुत्रस्य सरलत्वसम्बन्धे कथा

एकस्य श्रेष्ठिनः पुत्रो जल्पितः प्रत्युत्तरं दत्ते। ततः श्रेष्ठिना प्रोक्तम्—भो पुत्र! पितुः प्रत्युत्तरो[1] न दीयते! पुत्रस्तथेति प्राह। तत एकदा पुत्रो भीमाह्वो द्वारं दत्वा शय्यायामुपविष्टः।

ततः श्रेष्ठी आगतः प्राह—भो पुत्र! अत्रागच्छ, द्वारमुद्घाटय। स च पितुः वचः स्मरन् उत्तरं न दत्ते। घटीचतुष्ट्या[2] नन्तरं स्वकार्यार्थं द्वारमुद्घाटयामास। श्रेष्ठी जगौ-त्वया कथमुत्तरो न दत्तः। पुत्रोऽवग्—श्रीपूज्यैः प्रोक्तम्-पितुः प्रत्युत्तरो न दीयते। पिताऽवग्—पुत्र! एवंविधे कार्ये उत्तरादि दीयते। ततः पुत्रोऽवग्—ओमिति।

---

१. 'उत्तरम्' नपुंसक लिंग पाठ होना चाहिए।
२. 'चतुष्टयानन्तरं' होना चाहिए।

५. छल राजा की कृपणता के सम्बन्ध में कथा

एक बार झाल्लोवाटिका के स्वामी छल राजा को, जिसने पहले कभी दान नहीं दिया था, मरने के समय दान देने की इच्छा हुई। उसने पुत्रों के आगे कहा—इन गायों, इन घोड़ों, इन रथों तथा इन स्त्रियों के दान करने की मेरी इच्छा है। तब मन्त्री आदि राजपुरुषों तथा पुत्रों ने सोचा—यह तो सब राज्य ही दे देगा। इसका उत्तर अब देना उचित है। (ऐसा सोचकर पुत्रों ने कहा)—'मरने के बाद सब दे दिया जायगा।' पर ऐसा कह कर भी राजा के उन पुत्रों ने कुछ भी दान नहीं दिया और वह मर गया। इसलिए जो अपने हाथ से पहले दिया जाता है, वही अपना होता है, दूसरा नहीं। मरते समय तो हित चाहने वाले भी पुत्र बदल जाते हैं।

६. सेठ के लड़के के भोलेपन के सम्बन्ध में कथा

एक सेठ का लड़का था जो कुछ कहने पर जवाब दे देता था। तब सेठ ने कहा—अरे बेटे! पिता के कहने पर जवाब नहीं देना चाहिए। पुत्र ने कहा—अब आप के कथनानुसार ही करूँगा। इसके बाद भीम नामक वह लड़का एक बार घर में दरवाजा बन्दकर बिस्तर पर बैठा रहा।

कुछ देर बाद सेठ ने आकर कहा—अरे बेटा! यहाँ आओ, दरवाजा खोलो। किन्तु वह तो पिता जी की बात का स्मरण करता हुआ उत्तर नहीं दे रहा था। चार घंटे बाद निजी काम से दरवाजा खोला। तब सेठ बोले—तुमने उत्तर क्यों नहीं दिया? लड़का बोला—पूज्यचरण! आपने ही कहा था—पिता जी को उत्तर नहीं दिया जाता। पिता बोले—इस तरह के कार्य में उत्तर आदि दिया जाता है। तब लड़के ने कहा—ठीक है, ऐसा ही करूँगा।

७. व्याघ्राद् रक्षणसम्बन्धे नार्याः बुद्धिकथा

उन्देलिके[1] ग्रामे राजसिंहः क्षत्रियः। तद्भार्या कलहप्रिया रुष्टाऽन्यदा पुत्रद्वयं नीत्वा निःससार पितुर्गृहं प्रति। गता मलयपर्वते चन्दन-द्रुमादि-वृक्षसङ्कुले एकं व्याघ्रं संमुखमागच्छन्तं दृष्ट्वा दध्यौ—कथमस्माच्छुटिष्यते[1]? तत उत्पन्नधीः पुत्रौ चपेटया आहत्य प्राह—कथं युवां व्याघ्रं भक्षितुं कलहं कुरुथः? भवद्भिस्तु अग्रे 'बहवो भक्षिताः, अहं तु बुभुक्षिताऽस्मि। वयं त्रयः असौ तु एकः। कथमात्मन उदरपुष्टिर्भविष्यति। एवं जल्पन्तीं श्रुत्वा व्याघ्रो दध्यौ—एषा व्याघ्रामारी नारी, अहं मुधा धावितोऽत्रैवाहन्तुम्। एते सर्वे व्याघ्रभक्षकाः। एवं ध्यात्वा व्याघ्रो नष्टः[2]। सा चोद्वलिता तस्माद्भयात्।

---

१. देशी शब्द है।

२. 'णश् अदर्शने' धातु से गायब होने के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

७. बाघ से बचने के सम्बन्ध में नारी की बुद्धि की कथा

उन्देलिक ग्राम में एक राजसिंह नाम का क्षत्रिय (था)। उसकी कलहप्रिया स्त्री रुष्ट होकर एकबार दो पुत्रों को लेकर पिता के घर की ओर चल पड़ी। चन्दन आदि वृक्षों से युक्त सघन पर्वत पर पहुँचने पर सामने आते हुए एक बाघ को देखकर वह विचार करने लगी—किस प्रकार इससे छुटकारा मिलेगा ? इसके बाद सोचने पर उसे एक उपाय सूझा। उसने पुत्रों को थप्पड़ से मारकर कहा—क्यों तुम दोनों बाघ को खाने के लिए झगड़ा कर रहे हो ? तुम लोगों ने तो पहले ही बहुत से बाघों को खा लिया है। किन्तु मैं भूखी हूँ। पर हम लोग तीन हैं और यह तो एक ही है। किस प्रकार अपना पेट भरेगा ? इस प्रकार की उसकी बात सुनकर बाघ सोचने लगा—अरे, यह तो बाघ को मारने वाली स्त्री है। मैं व्यर्थ ही इसे मारने की दृष्टि से यहाँ दौड़ा आया। ये सभी बाघ को खाने वाले हैं। ऐसा विचार कर बाघ चला गया और वह उसके भय से बच गयी।

८. प्रतार्य हलाऽनयनसम्बन्धे द्विजकथा

एकदा कृष्णविप्रः कृषिं मण्डयामास। सदा हलं खेटयतो[1] ऽन्यदा हलं भग्नम्। तदा ध्यातं किं करिष्यामि, भग्नं दिनं पतिष्यति। ततो नन्दनस्याग्रे विप्रः प्राह—देवचन्द्र-कौटुम्बिकपार्श्वाद् हलं आनयिष्यामि[2]। पुत्रोऽवग्—स मुधा हलं नार्पयिष्यति। पिता प्राह—मम विज्ञत्वं तदा, यदा तस्य पार्श्वाद् मुधावचनेन हलमानयिष्यामि। ततः स विप्रस्तस्योपान्ते गतः उपदेशं ददाविति—हलदानं स्वर्गाय भवति। यतः—

हल्लाया[3] दीयते दानं खादिर्यास्तु[4] विशेषतः।
हलदानप्रदानेन स्वर्गे हल्लति[5] मल्लति[6]॥

श्रुत्वैतत् तेन हलं दत्तम्। स च विप्रो हलं क्षेत्रे गत्वा—[सूनवे] सूनो ददौ प्राह च—मुधेदं हलमानीत मया।

---

१. 'किट् खिट् गतौ' धातु के प्रेरणार्थक शतृ का रूप है।
२. 'आनेष्यामि' होना चाहिए।
३. देशी शब्द है। हल्या (हल्य, टाप्) हलों का समूह।
४. खादिरी (खैर का वृक्ष) शब्द के षष्ठी का रूप है।
५. हल्ल् धातु लौटाने के अर्थ में है।
६. मल्ल् (भ्वा० आ० मल्लते) धातु का अर्थ अधिकार में रखना, हृष्ट-पुष्ट होना है।

८. ठग कर हल लाने के सम्बन्ध में ब्राह्मण की कथा

एक बार कृष्ण नामक ब्राह्मण ने खेती का कार्य शुरू किया। बराबर जोतने से अचानक हल टूट गया। ब्राह्मण सोचने लगा—क्या करूँ, हल टूट गया, खेत जोते बिना ही दिन समाप्त हो जायगा। तब अपने लड़के के आगे उसने कहा—अपने कुटुम्बी देवेन्द्र के पास से हल ले आता हूँ। लड़का बोला--वह बिना स्वार्थ के हल नहीं देगा। पिता ने कहा—मेरी तभी चतुराई मानी जायगी जब उसके पास से ठगकर मैं हल ले आऊँ। इसके बाद वह ब्राह्मण उसके पास गया और उसे इस प्रकार शिक्षा देने लगा—हल देना स्वर्ग-प्राप्ति के लिए होता है। कहा भी गया है—हलों का दान करना चाहिए, विशेष कर खैर की लकड़ी के हल का। हल का दान करने से स्वर्ग में खूब सुख मिलता है तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहता है।

यह सुनकर उसने ब्राह्मण को हल दे दिया और उस ब्राह्मण ने खेत पर जाकर लड़के को हल थमा दिया तथा कहा कि मैं ठगकर ही हल लाया हूँ।

९. वानरस्य हितोपदेशसम्बन्धे कथा

एकस्मिन् वने वानरयूथपतिः शुष्कवनं दृष्ट्वा वानरान् प्रति प्रोवाच— गच्छत यूयं, शाड्वलं वनं पश्यताम्[१]। ततस्ते वानरा वनं वीक्ष्य यूथपतेः पुरः प्रोचुः। ततो यूथपतिर्वानरैस्त-स्मिन् वने ययौ। शाड्वलानि तृणानि वर्याणि फलानि भक्षि-तानि तैः। ह्रदे पयः पातुं ययौ यूथपतिः। तदा तत्र यूथेश-स्तस्मिन् ह्रदे पयः पातुम् आगच्छतां पशूनां पदानि दृष्ट्वा पश्चाद्वलमानानामदृष्ट्वा यूथेशो जगौ—भो वानराः! यूयं नलिनीपत्रैः पयाऽत्र पिबन्त,[२] न च मध्ये प्रवेष्टव्यम्। अयं ह्रदः सापायो दृश्यते। तेन यूथेशेनोक्तं ये चक्रुस्ते सुखिनो जाताः, ये च न चक्रुस्ते मृताः। एवं ये गुरुमातृपितृस्वामि-मित्रादिवचः कुर्वते ते सुखिनो भवन्ति नेतरे।

१०. भरटकस्य अवहेलनासम्बन्धे कथा

एकस्मिन् ग्रामे भरटको वसति स्म। इत आसन्नग्रामे भीमकौटुम्बिकेन बहवो लोका जेमनायाकारिताः सन्ति। ततः पत्नी भरटकं पतिं प्रति प्राह—त्वं क्षेत्रे गच्छन्नसि। यदि कदाचित्तव जेमनायाऽऽकारणमागच्छति तदा किमुत्तरं दीयते? तेनोक्तम्—अस्य पापिनो गृहे को याति। यदि कदाचिदायात्याकारणं तदा प्रोच्यम्[३]—अस्मिन्नासन्नक्षेत्रे भरटकोऽस्ति। एवं प्रोच्य स क्षेत्रे गतः। इत आकारणं नायातम्। ततः सन्ध्यायां भरटक आगतः। पत्न्योक्तं—भवत आकारणं नायातम्। भरटकोऽवग— तस्य कृपणस्य गृहे को याति?

---

१. 'पश्य' के स्थान पर यह प्रयोग है।
२. 'पिबत' ऐसा प्रयोग होना चाहिए।
३. 'प्रवाच्यम्' के स्थान पर 'प्रोच्यम्' का प्रयोग है।

९. वानर के हितोपदेश के सम्बन्ध में कथा

एक जंगल में वानरों का मुखिया वन को सूखा देखकर वानरों से बोला—तुम लोग जाओ, हरे-भरे जंगल देख आओ। इसके बाद उन वानरों ने जंगल देखकर मुखिया के सामने बता दिया। पुनः मुखिया वानरों के साथ उस जंगल में गया। सभी लोगों ने हरी-हरी घासें एवं अच्छे-अच्छे फल खाये। तालाव में जल पीने के लिए जब मुखिया गया तो उसने वहाँ उस तालाब में जल पीने के लिए जा रहे पशुओं के पदचिह्न तो देखे किन्तु उनके लौटने के पदचिह्न न देखकर मुखिया ने कहा—अरे वानरों ! तुम लोग कमल के पत्तों द्वारा ही पानी पी लो, तालाब में मत हलो। यह तालाव खतरनाक दिखाई पड़ रहा है। मुखिया की बात जो माने वे तो बच गये किन्तु जो नहीं माने वे तालाव में हलकर मर गये।

इस प्रकार जो गुरु, माता-पिता, स्वामी, मित्र आदि की बात मानकर काम करते हैं, वे ही सुखी होते हैं, दूसरे नहीं।

१०. कुम्हार के अपमान के सम्बन्ध में कथा

किसी ग्राम में एक कुम्हार रहता था। इधर पास के ही ग्राम में भीम के परिवार वालों ने बहुतों को भोजन के लिए बुलाया। यह जानकर पत्नी ने कुम्हार से कहा—तुम खेत पर जा रहे हो। कहीं यदि तुम्हारे भोजन का बुलावा आवेगा तो क्या उत्तर दूँगी ? उसने कहा इस पापी के घर कौन जाता है ? यदि बुलावा आ जाये तो कह देना—इसी पास वाले खेत में हैं। इस तरह कहकर वह खेत पर चला गया। इधर बुलावा नहीं आया। काम समाप्त कर कुम्हार सायंकाल घर लौटा। पत्नी ने कहा—आपका बुलावा तो नहीं आया। तब (अपने क्षोभ को छिपाते हुए) कुम्हार ने कहा—उस कृपण (कंजस) के घर कौन जाता है।

११. तित्तिर-शशकयोर्विवादे मार्जार-मध्यस्थता

वने तित्तिरश्चुरण्यर्थं गतो यदा, तदा तित्तिरस्याश्रये शशकः समेत्य स्थितः। तित्तिर आगत्यावग्—ममायमाश्रयः, कथं त्वमत्र स्थितः? शशकोऽवग्—मदीयोऽयम्। मिथो विवादे जाते एकः पुमान् प्राह—गङ्गातटे गच्छेतां, तत्र केदार[1] कङ्कणो दधानो हस्तयोर्धर्ममूर्त्तिर्मार्जारोऽस्ति। स भवतोर्विवादं स्फेटयिष्यति[2]। ततस्तत्र गतौ स्वं स्वं सम्बन्धं जजल्पतुः। तेनोक्तम्—अग्रे तिष्ठतां[3] युवाम्, विवादो भङ्क्ष्यते। ततो यदा तौ अग्रतस्तस्थतुः तदा द्वावपि कूटजल्पकौ इति प्रोच्य क्षुधातुरो मार्जारः केदारकङ्कणभृत् एकेनांहिणा[4] तित्तिरं, द्वितीयेन शशकं हत्वा तृप्तोऽभूत्। ततो मृत्वा नरके गतः मार्जारः।

---

१. अर्थ स्पष्ट नहीं है।

२. 'स्फिट्' चुरादि धातु है।

३. 'तिष्ठतम्' प्रयोग होना चाहिए।

४. अङ्घ्रि का पर्याय है।

११. तीतर और खरगोश के विवाद में बिल्ली की मध्यस्थता

एक तीतर दाना चुंगने जब जंगल चला गया तो उसके घर में कोई खरगोश घुस गया। लौटकर तीतर ने कहा– यह मेरा घर है, तुम यहाँ कैसे आये? खरगोश बोला—यह तो मेरा घर है। इस तरह दोनों के परस्पर विवाद में एक आदमी बोला—तुम दोनों ही गंगा तट पर जाओ। वहाँ हाथों में मिट्टी का कंगन पहने धर्ममूर्ति बिल्ली रहती है। वह तुम दोनों के विवाद का निर्णय कर देगी। वहाँ पहुँच कर दोनों ने अपने-अपने पक्ष की बात कही। बिल्ली ने कहा—तुम दोनों मेरे सामने खड़े हो जाओ, विवाद को मैं निपटा दूँगी। इसपर वे दोनों ही जब आगे खड़े हो गये, तब भूख से व्याकुल उस बिल्ली ने तुम दोनों ही झूठ बोलते हो इस प्रकार कह कर कंगन से सजे हुए एक पैर द्वारा तीतर को तथा दूसरे पैर द्वारा खरगोश को मार कर अपना पेट भर लिया। मरने पर बिल्ली को नरक में जाना पड़ा।

१२. पिता-पुत्रयोः वृषारोहणसम्बन्धे कथा

कर्णपुरात् चन्द्रः कमलपुत्रेण सह पृष्ठवाहं[1] नीत्वा वसन्तपुरं प्रत्यचलत्। मार्गे यदा पुत्रो वृषारूढस्तदा लोका जगुः—अयं वृद्धः पद्भ्यां हिण्डते, युवा पुत्रस्तु वृषारूढः, कोऽस्य पुत्रस्य विवेकः? ततः पुत्रस्तत उत्तीर्णः। वृद्धो वृषारूढश्चलति यदा लोका जगुः—पुत्रः पद्भ्यां याति, पिता वृषारूढः। यदा द्वावपि वृषारूढौ तदा लोका जगुः—वृषो मरिष्यति एतौ मुग्धौ। यदा द्वावपि पितापुत्रौ पादचारिणौ जातौ तदा लोका जगुः—अस्मिन्नीदृक्षे वृषभे सति एतौ मुग्धौ पद्भ्यां हिण्डेते। ततो द्वावपि प्रोचतुः—

सर्वथा स्वहितमाचरणीयं, किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।
विद्यते स नहि कश्चिदुपायः, सर्वलोकपरितोषकरो यः॥

तथा यथारुचि पितापुत्रौ यथेप्सिते पुरे ययतुः।

---

१. वह (बैल) जो पीठ पर बोझ ढोता है।

१२. पिता और पुत्र की बैल पर सवारी करने के सम्बन्ध में कथा

चन्द्र अपने लड़के कमल के साथ बैल ले कर कर्णपुर से वसन्त पुर की ओर चल पड़ा। रास्ते में जब लड़का बैल पर चढ़ा तो सब लोग कहने लगे—यह बूढ़ा बेचारा पैदल चल रहा है और नौजवान लड़का बैल पर चढ़ा है। लड़के की कैसी बुद्धि है? यह सुनकर वह बैल से उतर गया। पुनः जब बूढ़ा चढ़ा और लड़का पैदल चलने लगा तो लोगों ने कहा–बेचारा लड़का पैदल चल रहा है और यह बूढ़ा बैल पर चढ़ा है। बाद में जब दोनों ही बैल पर चढ़ गये तो सब लोगों ने कहा कि बेचारा बैल मर जायगा, ये दोनों मूर्ख हैं। पुनः जब दोनों ही पैदल चलने लगे तब भी लोगों ने कहा कि–इस प्रकार के बैल रहने पर भी ये दोनों मूर्ख पैदल चल रहे हैं। अन्त में परेशान होकर पिता-पुत्र दोनों ने कहा–

सब प्रकार से अपनी भलाई करनी चाहिए। तरह-तरह की बातें करने वाले लोग क्या करेंगे? ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे सब लोगों को सन्तुष्ट किया जा सके।

और तब पिता-पुत्र इच्छानुसार जहाँ जाना था, वहाँ चले गये।

१३. श्रेष्ठिवध्वा दन्तदर्शनसम्बन्धे कथा

श्रीपुरे चन्द्रश्रेष्ठिनश्चतस्रो वध्वोऽभूवन् । एकस्या वर्या मुद्रिका कारिता श्रेष्ठिना, द्वितीयस्या वर्या शाटिका, तृतीयस्याः स्वर्णमया दन्ताः । ताभिरेकदा स्वजना जेमनाय निमन्त्रिताः । ता जेमनायागता यदा, तदा प्रथमया मुद्रिका दर्शिता, द्वितीयया शाटिका दर्शिता । तृतीयस्या गृहे या जेमनायागताः तासां पुरः तृतीया दन्तान् स्वर्णमयानुद्घाट्य हसित्वा प्राह—भोः स्त्रियः अद्य किमपि रद्धुं[1] न शकितं[2] मया । कल्ये जेमनायागन्तव्यम् । ताभिः प्रोक्तं—वयं कृतं गौरवं, दन्ताः स्वर्णमया दर्शिताः । दन्तदर्शनेन वयं भोजिताः । दन्तदर्शनेनापि यच्छुटिता[3] स्तद्वरं इति जल्पन्त्यस्ताः स्वस्वगृहं गताः ।

---

१. 'रध' भोजनार्थक धातु से तुमुन् प्रत्यय ।

२. 'शक्तम्' के स्थान पर यह प्रयोग है ।

३. देशी शब्द है ।

१२. दातों को दिखाने के सम्बन्ध में सेठ की बहू की कथा

श्रीपुर में चन्द्र सेठ की चार बहुएँ थीं। सेठ ने एक को सुन्दर अँगूठी बनवा दी, दूसरी को अच्छी साड़ी दे दी और तीसरी को सोने के दाँत बनवा दिये। उन तीनों बहुओं ने एक बार अपने खास-खास लोगों को भोजन के लिए निमन्त्रित किया। भोजन करने के लिए वे स्त्रियाँ जब आयीं तो पहली ने (भोजन कराने के बाद) अपनी अँगूठी दिखायी और दूसरी ने अपनी साड़ी। तीसरी के घर जो स्त्रियाँ भोजन करने आयीं, उनके सामने उसने सोने के दाँतों को उघारते हुए हँसकर कहा–अरी ! मैं आज तो कुछ भी नहीं पका सकी। प्रात: (काल) भोजन करने के लिए आ जाना। उन सबों ने कहा—तुमने बड़े बड़प्पन का काम किया जो सोने के दाँत दिखला दिये। हम लोग तो दाँतों का ही दर्शन प्राप्त करके भोजन कर लिये। इन दातों के दर्शनमात्र से ही जो हमलोगों को छुट्टी मिल गयी, वही अच्छा है।

इस प्रकार आपस में वार्तालाप करती हुई वे सब अपने-अपने घर चली गयीं।

१४. ताम्बूलिकस्य कातरत्वसम्बन्धे कथा।

एकदा तम्बोलिकगृहे[1] गृहोलिका[2] निरगात्। तदा श्रेष्ठः तम्बोलिको बिभ्यन् बहिः कर्षयितुं न शशाक। स वधूं प्रति प्राह—गच्छ चतुःपथे, कञ्चन पुरुषं चतुः पथादाकारय यथा स एतां बहिः कर्षयति। सा च स्वसुरवचोऽङ्गीकृत्य चतुःपथे गता। लज्जया कमपि पुरुषमाकारयितुं न शशाक। ततः पश्चादागात्। तम्बोलिकोऽवग्[3]—कोऽपि पुरुषो नाकारितः? सा प्राह—भा[4] भा भा भा त्वमपि पुरुषोऽसि। ततस्तेनोक्तं—वधु! वरं प्रोक्तं—अहमपि पुरुषोऽस्मि, परं कातरत्वात्स्त्रीलक्षणोऽस्मि। ततो बध्वोक्तं—भा भा भा भा सत्यं प्रोक्तम्। एवं जल्पतोस्तयोर्गृहोलिका गृहाद्बहिर्निर्गता यदा, ताभ्यामुक्तं वरं जातम्। गृहोलिका स्वयमेवात्मनो भाग्याद् गृहाद्बहिर्निर्ययौ।

---

१. 'ताम्बूलिक' के स्थान पर देशी शब्द का प्रयोग है।

२. देशी शब्द है।

३. 'वच् परिभाषणे' धातु से लङ्लकार।

४. निरर्थक शब्द है।

१४. तमोली की कायरता के सम्बन्ध में कथा

एकबार तमोली (पान बेचने वाले) के घर से गोहटी निकली। जब तमोली भय के कारण उसे बाहर नहीं निकाल (खींच) सका तो बहू से बोला —चौराहे पर जाओ, और वहीं से किसी पुरुष को बुला लाओं, जिससे वह इस गोहटी को बाहर निकाल दे। ससुर की आज्ञा के अनुसार वह चौराहे तक तो पहुँची, किन्तु लज्जा के कारण किसी पुरुष को नहीं बुला सकी और पीछे लौट आयी। तमोली ने कहा-तुमने किसी पुरुष को नहीं बुलाया ! उसने कहा-भा भा भा भा तुम भी तो पुरुष हो। तब वह बोला-बहू ! तुमने ठीक कहा, मै भी पुरुष हूँ, पर कायर होने से स्त्री के स्वभाव का हूँ। बहू बोली-भा भा भा भा सच कहा, सच कहा।

इस प्रकार उन दोनों के बोलते रहने पर जब गोहटी अपने-आप घर से बाहर निकल गयी तो दोनों ने ही कहा-अच्छा हुआ। अपने भाग्य से गोहटी स्वयं ही घर से बाहर चली गयी।

१५. वैद्यस्य धनलोलुपत्वसम्बन्धे कथा

एकस्मिन् पुरे द्वौ भ्रातरौ वैद्यौ वैद्यकशास्त्रकुशलौ लोकान् चिकित्सयन्तौ लक्ष्मीमर्जयतः स्म। एकदा वृद्धभ्राता कस्मिंश्चिद् ग्रामे गतः। तत्र कमपि पुरुषं चिकित्सयित्वा धनमादाय पश्चादागच्छन् स्वपुरसमीपे समागात्, तत्र चितां प्रज्वलन्तीं दृष्ट्वा दध्यौ—अहं ग्रामेऽन्यत्रागमम्, एकः कोऽपि मृतोऽत्र, तस्य चिता ज्वलन्ती दृश्यते। मम भ्रात्रा अस्य नाडिं विलोक्य किमपि धनं गृहीतं न वेति। ततो वैद्यो दध्यौ—

साम्प्रतं दृश्यतेऽत्रैव प्रज्वलन्ती चिता किल।
ग्राममगामहं[1] मे तु भ्रातुः किं चरितं न वा॥
चितां प्रज्वलितां दृष्ट्वा, वैद्यो विस्मयमागतः।
नाहं गतो मम भ्रातुः, कस्येदं हस्तलाघवम्॥

---

१. 'गाङ् गतौ' धातु, लङ्लकार।

१५. वैद्य की धनलोलुपता के सम्बन्ध में कथा

एक नगर में वैद्यक शास्त्र के पारंगत दो भाई वैद्य थे। वे लोगों की चिकित्सा करके धनोपार्जन करते थे। एक बार बड़ा भाई किसी गाँव में गया। वहाँ किसी पुरुष की चिकित्सा करके धन लेकर पीछे लौटते हुए अपने नगर के पास पहुँचा। वहाँ जलती हुई चिता देखकर सोचने लगा—मैं दूसरे गाँव गया था, यहाँ कोई एक मर गया है, उसकी जलती हुई चिता दिख रही है। मेरे भाई ने इसकी नाड़ी देखकर कुछ धन लिया कि नहीं ? फिर वैद्य विचार करने लगा—

इस समय यहाँ पर जलती हुई चिता दिखाई पड़ रही है किन्तु मैं तो बाहर से गाँव को लौटा हूँ, मेरे भाई का यह कार्य है कि नहीं ?

चिता को जलती हुई देखकर वैद्य आश्चर्य में पड़ गया कि मैं तो गाँव गया ही नहीं, मेरे भाई का अथवा अन्य किसीका यह हस्त-कौशल है ?

१६. विधवापुत्रस्य मूढतासम्बन्धे कथा

कस्या अपि विधवायाः पुत्रो व्यवसायं कुर्वन्नेकस्यापि कार्यस्य पारं सन्ध्यायामपि न याति। कार्याणि बहूनि आरभते, नैकस्य पारं गृह्णाति। ततो विचाले[1] कार्याणि मुञ्चति। एकदा मात्रोक्तम्—पुत्र! तव पिता यत्कार्यं कर्तुमारब्धवान् तस्य पारं नीत्वैवामुञ्चत्। एतन्मातुर्वचनं श्रुत्वा एकदा भाद्रमास-मत्तशंडस्य क्षेत्रे प्रविष्टस्य हक्कयितुं[2] धावितः। पुच्छे विलग्नः। स शण्डः क्षेत्रमध्ये इतस्ततस्त्वरितं धावति। मातुर्वचः स्मरन् शण्डस्य पुच्छं यदा नामुञ्चत् तदा लोकैरुक्तं-मुञ्च शण्डपुच्छं, नो चेत् यमसद्मनि[3] यास्यसि। तेषामग्रे प्राह स—मम पिता समारब्धं कार्यं कदापि नामुञ्चत्। अहमपि पितृवत्कार्यं कुर्वाणोऽस्मि, एवं जल्पन् स मृतः। माता दुःखिनी जाता।

---

१. 'विकाले' ऐसा पाठ होना चाहिए।

२. देशी शब्द है (हक्क+तुमुन्)।

३. यमराज के घर।

१६. विधवापुत्र की मूढ़ता के सम्बन्ध में कथा

किसी विधवा का पुत्र व्यवसाय तो करता था किन्तु एक भी कार्य में दिन भर परिश्रम के बाद भी सफल नहीं होता रहा। कार्य बहुत-सा आरम्भ करता था, किन्तु एक का भी पार नहीं पाता था जिससे सायं सब काम छोड़ देता था। एक बार उसकी माँ ने कहा– बेटे! तुम्हारे पिताजी जो कार्य आरम्भ करते थे उसको पूरा क़रके ही छोड़ते थे। माँ के इस वचन को उसने हृदयङ्गम कर लिया। एक बार भाद्रपद मास के कारण मतवाले, खेत में घुसे हुए साँड़ को हाँकने के लिए दौड़ा। पूँछ पकड़े था। वह साड़ खेत में इधर-उधर जोरों से दौड़ रहा था। माँ के वचन का स्मरण करता हुआ उसने साँड़ की पूँछ को जब नहीं छोड़ा तो लोगों ने कहा—साँड़ की पूँछ छोड़ दो, नहीं तो मर जाओगे। उन लोगों के सामने उसने कहा–मेरे पिताजी जिस काम को शुरू कर देते थे उसको कभी नहीं छोड़ते थे। मै भी पिता जी के समान ही कर रहा हूँ। इस प्रकार बकता हुआ वह बहुत थक जाने से मर गया। माता को इससे बहुत कष्ट हुआ।

१७. वृद्धस्य वृद्धत्वसम्बन्धे कथा

एको वृद्धो मार्गे अधोमुखो याति, तदा (तं) तथा हिण्डमानं[1] दृष्ट्वा तरुण एकः पुमान् प्राह—भो वृद्ध! अधोमुखं किं हिण्डयते[2]? वृद्धोऽवग्—रत्नमेकं मार्गेऽस्मिन् पतितं तद्विलोकयन्नस्मि। युवा प्राह—किं रत्नं पतितम्? वृद्धो जगौ—भवद्भिरत्र रत्नं हारयिष्यते, युवाऽवग्-किं रत्नं भवति यद् विलोक्यते? वृद्धोऽवग्—यौवनरत्नं हारितं पातितं च। तद्विना सर्वोऽपि पुत्रपत्नीप्रभृतिर्न मानयति। यतः—

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता दन्ताश्च नाशं गता,[3]
दृष्टिर्भ्रश्यति रूपमेव हसते वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते,
हा! कष्टं जरयाऽभिभूतपुरुषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते॥

युवा प्राह—सत्यं वृद्धेनोक्तम्—ततो वृद्धं क्षमयित्वा[4] युवा गतः।

---

१. 'हिडि गत्यनादरयोः' धातु से शानच् प्रत्यय।
२. 'हिण्ड्यते' ऐसा प्रयोग होना चाहिए।
३. 'क्षमूष् सहने' धातु का प्रेरणार्थक रूप।
४. "अवजानाति" शुद्ध रूप होगा।

१७. वृद्ध की बुढौती के सम्बन्ध में कथा

एक बूढ़ा रास्ते में मुँह को लटकाये हुए जा रहा था। उसे उस प्रकार जाते हुए देखकर एक युवा पुरुष बोला—अरे बूढ़े ! नीचे मुख किये हुए क्यों जा रहे हो ? बूढ़ा बोला—एक रत्न इस रास्ते में गिर गया था उसी को देख रहा हूँ। युवक ने कहा—कौन रत्न गिर गया ? बूढ़ा बोला—आप लोग भी यहाँ रत्न भुलवायेंगे ? युवक बोला—वह कौन रत्न है, जिसे देख रहे हो ? बूढ़ा बोला—यौवन-रत्न भुलवा दिया हूँ, गिरा दिया हूँ। उसके विना पुत्र-पत्नी आदि सभी मेरा सम्मान नहीं कर रहे हैं। क्योंकि—

शरीर सिकुड़ गया, चाल बिगड़ गयी, दाँत नष्ट हो गये, आँख धँसी जा रही है, लोग रूप देखकर हँसते हैं और मुख लार-युक्त हुआ जा रहा है। भाई-बन्धु कहना नहीं मानते, पत्नी सेवा करना नहीं चाहती। हाय, कष्ट है—बुढ़ापे से ग्रस्त पुरुष का पुत्र भी अपमान करने लगता है।

युवक ने मन-ही-मन कहा—बूढ़े ने सच ही कहा। फिर बूढ़े से क्षमा माँग कर युवक चला गया।

१८. धूर्तद्विजस्य बुद्धिसम्बन्धे कथा

एकस्मिन् ग्रामे द्विजः श्रीधरः। तत्र चन्दनाह्वश्चर्मकारश्च। तस्य पार्श्वे श्रीधरः उपानद्—युगं कारयामास। चर्मकारोऽनिशं मूल्यं याचते। सदा विप्रो वदति—त्वां हृष्टं करिष्यामि। एवं वदति तस्मिन् बहुः कालो गतः। स विप्रोऽन्यदा धनार्थं चर्मकृता धृतः, धनं विना न मुञ्चति सः।

ततोऽन्यदा तत्रैव ग्रामपतेः सुतो जातः। ततस्तं द्विजो भूपपार्श्वेऽनैषीत् प्राह च—मया पूर्वमुपानद्ग्रहणावसरे प्रोक्तं त्वां हृष्टं करिष्यामि। अस्य राज्ञः सुतो जातोऽस्ति। त्वं "रुलीयाइत[1]" अथवा न? एतच्छ्रुत्वा चर्मकृद्दध्यौ—यदि ब्रुवे अहं न "रुलीयाइत" तदा राजा रुष्टो मां दण्डयति। तत उक्तं "रूलीयाइत हूं हूओ"। किं जल्प्यते अधिकम्? यदा पृष्टः ततोऽधिकजल्पने कोऽपि लाभो न। ततश्चर्मकृत् स्वगृहे गतः।

---

१. यह "प्रसन्न" अर्थ में देशी शब्द है।

१८. धूर्त ब्राह्मण की बुद्धि के सम्बन्ध में कथा

एक गाँव में श्रीधर नाम के ब्राह्मण थे और वहाँ चन्दन नामका चर्मकार भी रहता था। श्रीधर ने उससे दो जूते बनवाये। चर्मकार बराबर (जूतों का) मूल्य माँगता था। ब्राह्मण सदा कहते थे- प्रसन्न कर दूँगा। इस प्रकार कहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। तब कभी चर्मकार ने पैसे के लिए उस ब्राह्मण को पकड़ लिया और वह धन लिये बिना उसे नहीं छोड़ रहा था।

बाद में वहाँ गाँव के राजा को लड़का पैदा हुआ। ब्राह्मण उस (चर्मकार) को राजा के पास ले गये और बोले—मैंने पहले जूता लेते समय कहा था कि तुम्हें प्रसन्न कर दूँगा। आज राजा को लड़का हुआ है। तुम प्रसन्न हो अथवा नहीं? इतना सुनकर चर्मकार सोचने लगा—यदि मैं कहता हूँ कि नहीं प्रसन्न हूँ तो राजा रुष्ट होकर मुझे दण्ड देने लगेंगे। इसलिये (उसने) कहा—मै प्रसन्न हूँ। प्रसन्न हूँ। अधिक क्या कहूँ? यदि (मुझसे) पूछा भी जाय तो अधिक बोलने से कोई लाभ नहीं। इसके बाद चर्मकार अपने घर चला गया।

१६. मूर्खस्य अन्वर्थनामकरणसम्बन्धे कथा

एकस्मिन् पुरे एकस्य कौटुम्बिकस्य पुत्रस्य यथा तथा कुर्वतो, यथा तथा हिण्डतो, यथा तथा वीक्ष्य [न्त]-माणस्य "चैत्रयडि"[१] नाम लोकैर्दत्तम्। स च दूनः सन् यदा सन्मुखं वक्ति तदा लोका जगुः—त्वं यत्र गच्छसि तत्र "चैत्र-यडि" भविष्यसि। सोऽवग्—तत्राहं यास्यामि यत्र मां "चैत्रयडि"कोऽपि न वदति। अत्र तु [२]मामेवं ख्यातिरभूत्। ततो निर्गतः स निदाघे तृषाक्रान्तः कस्यचिद् ग्रामोपान्ते[३] कूपे जलमागृह्णानानां स्त्रीणामन्तराले प्रविश्य इतस्ततो विलोकयन् चुलुकेन जलं पिबन् स्त्रीन् स्त्रीभिः प्रोचे—अयं चैत्रयडिः कुत्रागतः? सोऽवग्-मां मातरेवं कथं जल्पथ? ताः प्रोचुः-तव लक्षणैः। ततः स दध्यौ-योजनानां शतमागाम्, अत्रापि मम ज्ञायते। ततः स स्वपुरेऽभ्येत्य "चैत्रयडि" वदत्सु लोकेषु न चुक्रोध।

---

१. मूर्ख अर्थ वाचक देशी शब्द है।
२. 'ममैवं' पाठ होना चाहिए।
३. 'ग्रामस्य उपान्ते' होना चाहिए।

१९. मूर्ख के यथार्थ नामकरण के सम्बन्ध में कथा

एक नगर में गृहस्थ का एक पुत्र था। वह उटपटांग बोलता था, मनमानी करता था, व्यर्थ ही इधर-उधर घूमता रहता था तथा इधर-उधर देखता रहता था। अतः लोगों ने उसका नाम 'चैत्रयडि' (मूर्ख, गँवार) रख दिया। वह खिन्न होकर जब लोगों से कहता था तो लोग (उससे) बोलते थे—तुम जहाँ जाओगे वहाँ 'चैत्रयडि' रहोगे। वह बोला—मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ मुझे कोई भी 'चैत्रयडि' नहीं कहेगा। यहाँ तो मेरी इसी प्रकार की ख्याति (प्रसिद्धि) हो गयी है। इसके बाद वहाँ से निकला। गर्मी में प्यास से व्याकुल हो किसी गाँव के समीप कुएँ पर पहुँचा। पानी भरती हुई स्त्रियों के बीच में घुस कर इधर-उधर देखते हुए अञ्जलि से पानी पीने लगा। उससे स्त्रियों ने कहा—यह 'चैत्रयडि' (मूर्ख) कहाँ से आ गया? वह बोला—माताओं! मुझे ऐसा (आप लोग) क्यों कह रही हैं? वे सब बोली—तुम्हारे लक्षणों से! इसके बाद वह सोचने लगा—सैकड़ों योजन (चलकर) मैं यहाँ आया, पर यहाँ भी मुझे (लोग) पहचान रहे हैं। ऐसा सोचकर पुनः वह अपने नगर लौट गया और लोगों के 'चैत्रयडि' कहने पर कभी भी क्रुद्ध नहीं हुआ।

२०. नापितस्य मन्त्रित्वसम्बन्धे कथा

एकस्मिन् पुरे भीमस्य भूपस्य नापितः प्रधानो बभूव। मन्त्रिणो न मन्यन्ते मनागपि। क्रमाद् वैरिभिः परितो व्याप्तं राज्यम्। ततो नैके जल्पन्ति--मन्त्रिणो विना राज्यं यास्यति। मित्रैरपि प्रोक्तम्--नापितस्य परीक्षां कुरु। वैरिषु समेतेषु कथं राज्यं रक्षिष्यति ? एकदा राज्ञा नापितः पृष्टः, यदि कदाचित्परचक्रं समेष्यति तदा त्वया कथं जेष्यते, का बुद्धिः, कथं करिष्यते च ? ततो नापितोऽवग्--आदर्शान् हस्ते कृत्वा निर्गमिष्यते[1] [निर्गमिष्यामः] पुरात्। तैरादर्शैरेव युद्धं करिष्यते। ततस्ते नंष्ट्वा[2] यास्यन्ति। ततो राज्ञा ज्ञातमेष नापितो न प्रधानः। यन्मया मन्त्रिणोऽपमानितास्तदयुक्तं कृतम्। यदि मन्त्रिणो न मानयिष्यन्ते तदा राज्यं गमिष्यति। ततो राज्ञा मन्त्रिणो मानिताः। ततो मन्त्रिबुद्ध्या ये ये वैरिणोऽभूवन् ते ते वशीकृताः।

---

१. 'निर्गंस्यत' पाठ होना चाहिए।

२. 'नशित्वा' भी प्रयोग होता है।

२०. नापित के मन्त्रित्व के सम्बन्ध में कथा

एक नगर में भीम राजा का एक नाई प्रधान मन्त्री बना। मन्त्रियों का थोड़ा-सा भी सम्मान न रहा। क्रमशः चारो ओर से शत्रुओं द्वारा राज्य घिर गया। तब बहुतों ने कहा—बिना मन्त्रियों के राज्य छिन जायगा। मित्रों ने भी कहा—हजाम की परीक्षा करो—शत्रुओं के चढ़ाई करने पर किस प्रकार राज्य की रक्षा करेगा ? तब राजा ने एक बार हजाम से पूछा--यदि कदाचित् शत्रुओं की सेना आक्रमण कर देगी तो तुम कैसे जीतोगे, क्या उपाय है और कैसे करोगे ? हजाम ने कहा--दर्पणों को हाथ में लेकर नगर से निकल जाऊँगा। उन दर्पणों से ही युद्ध करूँगा, जिससे वे (शत्रु) छिप कर भाग जायेंगे। इससे राजा ने समझा कि यह प्रधान (के योग्य) नहीं है। मैंने जो मन्त्रियों का अपमान किया, वह अच्छा नहीं किया। यदि मन्त्रियों का सम्मान नहीं किया जायगा तो राज्य चला जायगा। पुनः राजा ने मन्त्रियों का सम्मान किया। जिससे मन्त्रियों की बुद्धि से जो-जो भी शत्रु हुए वे सब वश में कर लिये गये।

२१. चाणिक्यस्य धनसंग्रहसम्बन्धे कथा

नन्दभूपस्य चाणिक्यो मन्त्री बभूव। स्तोकं कोशं वीक्ष्य राजा खिन्नोऽभूत्। तदा राजमनो ज्ञात्वा चाणिक्येन महेभ्या[1] याचिताः प्रोचुः—अस्माकं धनमर्प्पणयोग्यं नास्ति। ततश्चाणिक्येन सर्वे महेभ्या भोजनाय निमन्त्रिताः, वराहारं भोजिताः। ततो मदिराः पायिताः। ततः पत्रादि[2] दत्त्वा चित्रशालायां शायिताः। परिणतायां मदिरायाम् एको जनोऽवग्--मम गृहे सप्तकोट्यो हेम्नां सन्ति। अन्योऽवग्—तव गृहे स्तोका मम गृहे एकादश कोट्यः। एके त्रिंशत् एके चत्वारंशित्, एके षट्पञ्चाशत् इत्यादि जजल्पुः। एकः प्राह—अहं स्वर्णेन गङ्गाप्रवाह बध्नामि। एकः प्राह--मम गृहे सत्कगवां[3] दुग्धेन गङ्गाप्रवाहं स्खलयामि। एकः प्राह—मम गृहस्थ—घृततैलादिभिः गङ्गाप्रवाहं स्खलयामि, एकोऽवग्—धान्यमूढकानां[4] कोटिरस्ति, इत्यादि स्वस्वधनसंख्या कारिता इभ्याश्चाणिक्येन साक्षिणश्च कृताः, ततस्तेभ्यो धनं लात्वा[5] राज्ञः कोशः कृतः।

---

१. महान्तश्च ते इभ्याः धनिकाः।

२. सुगन्धित द्रव्य-इत्र आदि।

३. अर्थ स्पष्ट नहीं है। अथवा सत्ता के अर्थ में प्रयोग है।

४. सौ मन को मूढक कहते।

५. 'ला आदाने' धातु से क्त्वा प्रत्यय।

२१· चाणिक्य की धन-संग्रह करने के सम्बन्ध में कथा

नन्द राजा का मन्त्री चाणिक्य हुआ। थोड़ा खजाना देखकर राजा खिन्न हो गये। तब राजा का मनोगत जानकर चाणिक्य ने धनिकों से (धन) माँगा। उन लोगों ने कहा—हमलोगों के पास देने लायक धन नहीं है। इसके बाद चाणिक्य ने सभी धनिकों को भोजन के लिए निमन्त्रित किया, अच्छा भोजन कराया। बाद में शराब पिलाया (तथा) इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य देकर चित्रशाला में सुला दिया। शराब की नशा चढ़ने पर उनमें से एक धनिक बोला—मेरे घर सात करोड़ सोने हैं। दूसरा बोला--तुम्हारे घर थोड़ा है, मेरे घर ग्यारह करोड़ हैं। एक ने तीस, दूसरे ने चालिस, तीसरे ने छप्पन इत्यादि कहा। एक बोला--मैं सोने से गंगा की धारा बाँध दूंगा। एक ने कहा--मेरे पास ऐसी गाएँ है जिनके दूध से गंगा की धारा बहा सकता हूँ। एकने कहा--अपने घर के घी, तेल आदिसे ही मैं गंगा की धारा बहा दूंगा। एक बोला--(मेरे पास) सौ-सौ मन धान के करोड़ो ढेर हैं। इस रूपमें धनिकों से अपने-अपने धन की संख्या कहलाकर चाणिवय ने उन्हीं धनिकों को साक्षी (गवाह) बना लिया और उनसे धन लेकर राजा का खजाना (पूरा) कर डाला।

२२. कृकलासयोर्विरोधे सर्वविनाशकथा

एकस्य ग्रामस्य समीपे द्वौ कृकलासौ युद्धं कर्तुं लग्नौ । एको यदा युध्यन् द्वितीयशिरस उपरि चटति[1] तदाऽधःस्थो दन्तैर्दशति तम् । इत्यादियुद्धं कुर्वाणौ तौ द्रष्टुं लोका मिलिताः । सर्वे सन्ति, न पुनः कोऽपि वारयति । तदाऽकस्मादेकः कृकलासोऽनश्यत् । उपविष्टस्य निद्रया घूर्णितस्य गजस्य शुण्डायां प्रविष्टः । ततो द्वितीयोऽपि तत्पृष्ठतो धावन् तस्यैव गजस्य शुण्डायां प्रविष्टः । तत्रापि द्वावपि युद्धयतः स्म । ततोऽकस्माद् गज उन्निद्रः सन्नुत्थितः । शुण्डामितस्ततो वेदनया चालयन् सरःपालौ गतः[2] । तां पङ्क्तिं शुण्डया खनति । लोकास्तदा हसन्ति । ततोऽकस्मात्पालिः स्फुटिता[3] । लोकाः सर्वे प्लाविताः । पयसा ग्राममपि[4] प्लावितम् । गजोऽपि शुण्डाप्रविष्टकृकलासवेदनया मृतः । ततस्तावपि कृकलासौ पञ्चत्वं ययतुः । एवं विरोधेन सर्वं विनश्यति । ततो विरोधो न कार्यः स्वहितं वाञ्छद्भिः ।

---

१. चट् धातु–चढ़ने अर्थ में ।

२. बांध अर्थ है ।

३. 'स्फुट् भेदने' धातु है ।

४. ग्रामोऽपि प्लावितः । ऐसा पाठ होना चाहिए ।

२२. दो गिरगिटों के विरोध में सबके नाश की कथा

एक गाँव के पास दो गिरगिट युद्ध करने लगे। एक जब लड़ता हुआ दूसरे के शिर पर चढ़ता तो (दूसरा) नीचे स्थित होकर दाँतों से उसे काटता था। इस प्रकार उन दोनों के युद्ध को देखने के लिए लोग एकत्र हो गये। सभी (वहाँ) हैं, फिर भी कोई नहीं रोक रहा था। तभी अचानक एक गिरगिट भग गया तथा हाथी के सूँड़ में घुस गया। वह हाथी बैठा हुआ नींद से लुढ़क रहा था। तब दूसरा भी उसके पीछे दौड़ता हुआ उसी हाथी के सूँड़ में घुस गया। वहाँ भी दोनों युद्ध करते रहे। इससे अकस्मात् हाथी की नींद टूट गयी और वह उठ गया। पीड़ा के कारण सूँड़ को इधर-उधर चलाता हुआ तालाब के बाँध पर गया। उस बाँध को सूँड़ से खनने लगा तो लोग देखकर हँस रहे थे। तब, अचानक बाँध टूट गया। सभी लोग पानी में डूब गये। पानी से गाँव भी डूब गया। हाथी भी सूँड़ में घुसे हुए गिरगिट की पीड़ा से मर गया। इसके बाद वे दोनों गिरगिट भी मर गये। इस प्रकार विरोध करने से सब नष्ट हो जाता है। अतः विरोध नहीं करना चाहिए

२३. मेघवातयोर्विवादसम्बन्धे कथा

एकदा मेघवातौ मिथो जल्पतः स्मेति। मेघोऽवग्-अहमेव लोकं जीवयामि वारिदानात्। वायुराचष्टे-त्वया किं स्याद् यद्यहं वर्यं[1] न वामि तदा तव वृष्ट्योत्पादितं धान्यं विनंक्ष्यत्येव, तेनाहमेव जगज्जीवयामि। अहमेव यावल्लोकानां शरीरे तिष्ठामि तावल्लोका जीवन्ति। यदाऽहं गतः तदा स मृत एव।

मेघोऽवग्—मत्कृत्यं पश्य। ततोऽवसरेऽवसरे विलोक्यमानस्तथा मेघो ववर्ष यथा लोकानां शस्यमुद्रतां[2] कणभवनं[3] यावद्वर्द्धितम्। इतोऽकस्माद्वातस्तथा वाति स्म यथा सर्वं शुष्कम्। एकस्मिन् वर्षे मेघो वृष्टो नैव, तदा लोकैर्धान्यमुप्तमपि न। ततो लोकैरुक्तं—भो मेघवातौ युवामेकीभूय जगज्जीवयतो नो चेन्मरिष्यति जगत्। ततो वातमेघौ प्रीतिभाजौ तथा चक्रतुः यथा बहु सस्यं[4] जातम्। लोका अन्ये जीवा अपि यथा सुखिनोऽभूवन्।

---

१. वर्यम् का अर्थ हवा-बयार है।

२. 'शस्यमुद्गतम्' पाठ होना चाहिए।

३. अन्न में कण-दाना पड़ने से तात्पर्य है।

४. शस्य, सस्य दोनों प्रयोग धान्य के अर्थ में होता है।

२३. मेघ और वायु के विवाद के सम्बन्ध में कथा

एक वार मेघ और वायु आपस में वार्तालाप कर रहे थे। मेघ ने कहा—मैं ही जल देकर लोगों को जीवित रखता हूँ। वायु ने कहा—तुमसे क्या होता, यदि मैं (हवा) न बहता तो तुम्हारी वर्षा से उत्पन्न किया हुआ धान्य विनष्ट हो जाता। इसलिए मैं ही संसार को जीवित रखता हूँ। मैं ही जबतक लोगों के शरीर में रहता हूँ तबतक लोग जीवित रहते हैं। जब मैं शरीर से निकल जाता हूँ तो वह (प्राणी) मर जाता है।

मेघ बोला—मेरा काम देखो। तब मौका देखता हुआ मेघ ऐसा बरसा, जिससे लोगों की फसल जम गयी, उसमें दानों की वृद्धि हो गयी। इधर अकस्मात् वायु ऐसा बहा जिससे सब सूख गया। एक वर्ष मेघ बरसा ही नहीं, तब लोगों ने धान्य की बुआई भी नहीं की। फिर तो लोगों ने कहा—अरे मेघ और वायु! तुम दोनों मिलकर संसार को जीवित रखते हो। वैसा ही करो, नहीं तो संसार के लोग मर जायेंगे। इसके बाद मेघ और वायु इस प्रकार प्रेम करने लगे कि जिससे बहुत फसल हुई। मनुष्यों के साथ दूसरे जीव भी पूर्ण रूप से सुखी हो गये।

२४. मन्त्रिणो बुद्धिपरीक्षणसम्बन्धे कथा

इलावत्यां पुरि धम्मिल्लो राजा वरममात्यं नवीनं सुशीलं चकार। केनचिदुक्तम्—अयं मन्त्रीकृतोऽस्ति, परं न ज्ञायतेऽस्य कीदृशी बुद्धिरस्ति। ततो राज्ञा मुद्रया[1] मुद्रितं प्राभृतं भस्मच्छन्नं मन्त्रिणो[2] ददे प्रोक्तं च—इदं प्रीतिप्राभृतं शत्रुमर्दनभूपाय देहि। ततः स तत्प्राभृतं लात्वा विदिशायां पुरि जगाम। राज्ञोऽग्रे प्राभृतं मुक्तम्[3]। राजा तु उल्लिल्य[4] भस्म दृष्ट्वा कालमुखो भूत्वा रुष्टः प्राह—रे मन्त्रिन्! तव स्वामी ममेदृक्प्राभृतं प्रेषयति? तव शिक्षा दास्यते। मन्त्री प्राह—स्वामिन्! मम स्वामिनाऽश्वमेधो यज्ञः कारितो मङ्गलहेतुः, तद्भस्म सर्वेषां सज्जनानाम् अभीष्टानां नृपाणामपि प्रेषयामास। तत एतद्भस्म मुद्रितं कृत्वा स्वामिनः प्रेषितम् उक्तं च—

गजाः सन्ति हयाः सन्ति, विचित्राः सन्ति सम्पदः।
तवाप्यस्ति ममाप्यस्ति, दुर्लभं भस्म यज्ञजम् ॥ १ ॥

ततः स राजा तुष्टस्तं मन्त्रिणं तोषयामास, राज्ञा समं प्रीतिं चक्रे च।

---

१. 'मुद्रमा' का मुहर अर्थ है।
२. 'मन्त्रिणे' पाठ होना चाहिए।
३. स्थपितम् के अर्थं में प्रयोग है।
४. 'उघाट्य' के स्थान पर देशी का प्रयोग है।

२४. मन्त्री के बुद्धिपरीक्षण के सम्बन्ध में कथा

इलावती नगरी में राजा धम्मिल्ल ने सुशील नामक नये व्यक्ति को प्रधान मन्त्री बनाया। किसी ने कहा--यह मन्त्री बनाया गया है, किन्तु इसकी बुद्धि कैसी है, इसका पता नहीं। तब राजा ने मुहर से अंकित कर तथा भस्म में छिपाकर एक उपहार मन्त्री को दे दिया और कहा—यह प्रेमोपहार शत्रुमर्दन राजा को दे आओ। इसके बाद वह उस उपहार को लेकर विदिशा नगरी में गया। राजा के आगे उपहार रख दिया। राजा खोलने पर भस्म देख करके डरावना मुख बना कर क्रुद्ध हो बोले —अरे मन्त्री! तुम्हारे स्वामी ने हमारे लिए इस प्रकार का उपहार भेजा है? तुम्हें सिखा दूँगा। मन्त्री ने कहा—महाराज! मेरे स्वामी ने मंगलकारक अश्वमेध यज्ञ करवाया है। उसका भस्म सभी सज्जनों के पास तथा मित्र राजाओं के पास भी भेजा है। इसीलिए इस भस्म पर मुहर लगाकर स्वामी ने भेजा है और कहा है—

हाथी हैं, घोड़े हैं, विचित्र प्रकार की सम्पत्तियाँ हैं। (यह सब) तुम्हारे पास भी हैं, हमारे पास भी हैं। किन्तु यज्ञ से उत्पन्न भस्म दुर्लभ है।

इससे वह राजा प्रसन्न हो गया और उस मन्त्री को सन्तुष्ट कर दिया एवम् राजा के साथ प्रेम करने लगा।

२५. राजपुत्रस्य संकटोद्धारसम्बन्धे कथा

लक्ष्मीपुरे जितशत्रोर्भूपस्य श्रीः पत्न्यभूत्। चत्वारः पुत्रा भीम-सोम-चन्द्रार्जुननामानः। तस्य राज्ञो वज्र-कनक-रजत-लोहाकरा आसन्। राज्ञा परलोकं गच्छता चत्वार आकराः प्रत्येकं विभज्य दत्ताः। त्रयो हृष्टाः। चतुर्थो लोहाकरग्राही कृष्णास्योऽभूत्। चतुर्थं भूपपुत्रं श्यामास्यं वीक्ष्य सुमतिर्मन्त्री पप्रच्छ—किं तवास्यमीदृग्? ततस्तेन श्यामास्यसम्बन्धे प्रोक्ते मन्त्री प्रोहार्जुनं प्रति—त्वा पित्वां लघुं पुत्रं ज्ञात्वा भक्त्या तव लोहाकरो व्यश्राणि। अर्जुनोऽवग्—कथं ज्ञायते? मन्त्री प्रोहति—पित्रा ज्ञापितमस्ति ते लोहाकरात् यावन्मात्रं लोहं[1] निष्पद्यते तावत्त्वया भण्डारे स्थाप्यं, न विक्रेतव्यम्। वज्राकरादयो लोहं विना न वज्रादि लातुमीशते। ततोऽर्जुनोऽखिलं लोहं भण्डारे चिक्षेप। क्रमाल्लोहे निष्ठिते ते भीमादयो राजपुत्रा लोहं विना वज्रादीन् लातुं समारयितुं[2] न समर्था बभूवुः। ततः साधिकं[3] वज्रादि तोलयित्वा लोहं गृह्णते[4]। ततोऽर्जुनस्य बहुले धने जाते हया हस्तिनो रथाः पदातयो बहवोऽभवन्। क्रमान्महद्राज्यं जातम्। अर्जुनोऽपि भूपपुत्रः सुखी जातः।

---

१. लोहः, लोहम् दोनों प्रयोग है।
२. 'सम्भारयितुम्' के अर्थ में प्रयोग है।
३. 'आधिना सह वर्तते इति'। आधि का अर्थ 'रेहन' गिरवी है।
४. 'ग्रह ग्रहणे' धातु का रूप आत्मनेपदी।

२५. राजपुत्र के संकटोद्धार के सम्बन्ध में कथा

लक्ष्मीपुर में जितशत्रु राजा की श्री नामक पत्नी थी। भीम, सोम, चन्द्र और अर्जुन नामक चार पुत्र थे। उस राजा की हीरा, सोना, चाँदी और लोहा की खाने थीं। मरते समय राजा ने चारों खानें प्रत्येक को बाँटकर दे दीं। तीन (पुत्र) प्रसन्न थे। लोहे की खान लेने वाला चौथा पुत्र अप्रसन्न हो गया। चौथे राजपुत्र को अप्रसन्न देखकर सुमति मन्त्री ने पूछा—तुम्हारा मुख ऐसा क्यों हो गया है ? इसके बाद (अप्रसन्नता) का कारण कहने पर मन्त्री ने अर्जुन से कहा—पिताजी ने तुम्हें छोटा पुत्र समझकर प्रेम के कारण ही तुम्हें लोहे की खान दिया है। अर्जुन बोला—आप कैसे समझ रहे हैं ? मन्त्री ने (इस प्रकार) कहा—पिताजी ने तुम्हें आज्ञा दी है—'लोहे की खान से जितना भी लोहा निकलता है उसे भण्डार में रखना, बेचना नहीं।' हीरा आदि की खान वाले बिना लोहे के हीरा आदि नहीं ला सकते थे। तब, अर्जुन ने सब लोहा भण्डार में रख दिया। क्रमशः लोहे रख दिये जाने के कारण वे भीम आदि राजपुत्र लोहे के बिना हीरा आदि ले आने तथा सम्हालने में असमर्थ हो गये। इससे वे रेहन के साथ हीरा आदि तौलाकर लोहा लेते रहे जिसके कारण अर्जुन का धन बहुत बढ़ गया। हाथी, घोड़े, तथा पैदल (सैनिक) बहुत हो गये। क्रमशः बहुत बड़ा राज्य हो गया। इस प्रकार राजकुमार अर्जुन भी सुखी हो गया।

२६. श्रेष्ठिनः कूट-मानकप्रयोगसम्बन्धे कथा

धनावहश्रेष्ठिनो धनाढ्यो नन्दनोऽजनि। क्रमात् श्रेष्ठी हट्टं मण्डयामास। तत्र हट्टे बहूनि क्रयाणकानि[1] मण्ड्यन्ते। श्रेष्ठिना लोकं वञ्चयितुं कूटानि[2] मानकतुलादीनि[3] कृतानि। मानकस्य एकस्य दायकस्य 'एकपोकर[4]' नाम दत्तम्। धान्यदानाय ग्राहकस्य मानकस्य पञ्चपोकर इति। ततः श्रेष्ठी यदा धान्यं गृह्णाति तदा पञ्चपोकरेण लाति। यदा दत्ते तदा एक-द्वि-त्रिचतुःपोकरेण। यदा धान्यं गृह्णाति तदा पुत्रं प्रति वदति—पञ्चपोकरमानय पुत्र! यदा धान्यं दत्ते तदा वदति-एकपोकर-द्विपोकर-त्रिपोकर-चतुःपोकर मानकमानय!

एकदा एका ग्राहिका स्त्रीर्जगौ—श्रेष्ठिन्! तव पुत्रस्तु एक एव दृश्यते, नामानि बहूनि कथमस्य? श्रेष्ठ्यवग्—एकं नाम मया एकं मात्रा, एकं मातुलेन, एकं मातुलान्या, एकं तु लोकैर्नामास्य पुत्रस्य दत्तम्। एवं प्रोच्य सा वञ्चिता। एवं वञ्चं वञ्चं श्रेष्ठी श्वभ्रं[5] गतः।

---

१. देशी शब्द है।
२. छल-छद्म, नकली।
३. बटखरा।
४. देशी शब्द है।
५. गड्ढा, दरिद्रता।

२६. सेठ के नकली बटखरों के प्रयोग के सम्बन्ध में कथा

धनावह सेठ को धन नामक पुत्र हुआ। सेठ ने क्रमशः दुकान सजा दिया। वहाँ दुकान पर अनेक किरानी वस्तुएँ थीं। सेठ ने लोगों को ठगने के लिए (नकली) ही बटखरे-तराजू आदि रखे थे। जिस बटखरे से तौलकर देता था उसका नाम 'एक पोकर' रख दिया और जिस बटखरे से ग्राहकों का अनाज तौलकर लेता था उस बटखरे का 'पाँच पोकर'। इस प्रकार सेठ जब धान्य (अनाज) लेना होता था तो 'पाँच पोकर' से लेता था। जब देना होता तो एक, दो, तीन या चार पोकर से देता था। जब धान्य लेना था तो पुत्र से कहता पाँच पोकर ले आओ (और) जब धान्य देता था तब बोलता था— पुत्र ! एक पोकर, दो पोकर, तीन पोकर बटखरा ले आओ।

एक बार एक ग्राहक स्त्री ने लड़के का ही नाम पोकर है ऐसा समझ कर सेठ से कहा—हे सेठ ! तुम्हारा लड़का तो एक ही दिखता है, इसके नाम बहुत क्यों हैं ? सेठ बोला—'एक नाम मैंने, एक माता ने, एक मामा ने, एक मामी ने और एक नाम इस लड़के का ग्राहकों ने रखा है।' इस तरह कहकर उसे ठग दिया। किन्तु इस प्रकार ठगते-ठगते सेठ दरिद्र हो गया।

२७. स्वर्णकारस्य पश्यतोहरत्वसम्बन्धे कथा

कस्मिंश्चित् पुरे सौवर्णिको दुर्बलो भूपेन दृष्टः पृष्टश्च—तव दुर्बलत्वं किं दृश्यते ? सौवर्णिको जगौ—हेम न दृश्यते । राजा जगौ—हेम दर्शयिष्यते तुभ्यं, तदा त्वं मत्तो भविष्यसि । स जगौ—हेम दृष्टं यदि तदाऽहं मत्त एव ।

ततो राज्ञा हेममयी ५२ पलमयी स्थालिका दर्शिता । ततः सौवर्णकारको यत्र सा स्थाली धाव्यते[1] तत्र कर्कशां वालुकां क्षिप्तवान् छन्नम् । ततः स सुवर्णकारकः तां वालुकां लात्वा गालयित्वा[2] सुवर्णसङ्कुलं कृतवान्, मत्तोऽभूच्च ।

राज्ञा पृष्टमेतत्कुतः प्राभृतीकृतम् । सोऽवग्—राजा तुष्टः । ततः स प्राह—स्वामिन् । या ५२ पलहेमस्थाली विद्यते सा तोल्यताम् । ततो राज्ञा तोलायिता[3] ४४ पलमयी जाता स्थाली । ततो पारितोषिकदानं ददौ तस्मै ।

---

१. 'धाव् गतिशुद्ध्योः' धातु का प्रेरणार्थक कर्मवाच्य है ।

२. 'गल अदने' धातु से प्रेरणार्थक क्त्वा प्रत्यय ।

३. 'तुल उन्माने' धातु से प्रेरणार्थ क्त प्रत्यय पुक् आगम ।

२७. सुनार के देखते हुए चुराने के सम्बन्ध में कथा

किसी नगर में राजा ने सुनार को दुबला-पतला देखकर पूछा—तुम इतने दुबले क्यों दिख रहे हो ? स्वर्णकार बोला—सोना नहीं दिखायी पड़ रहा है। इसलिये राजा ने कहा—यदि तुम्हें सोना दिखा दिया जायगा तो तुम मतवाले हो जाओगे। वह बोला—यदि सोना दिख गया तो मैं मतवाला ही (सही)।

इसके बाद राजा ने ५२ भर वजन वाली सोने की बटलोही दिखलायी। सुवर्णकार ने जहाँ वह बटलोही धोयी जाती रही वहाँ छुपे रूप से कर्कश बालू रख दी। बाद में उस सुनार ने उस बालू को लाकर गला करके सोना एकत्र कर लिया और मतवाला हो गया।

राजा ने पूछा—यह कहाँ से उपहार मिला है ? वह बोला—राजा प्रसन्न हो गये हैं। राजा ने कहा—मैं तुमसे कैसे प्रसन्न हूँ ? तब वह बोला—स्वामिन् ! जो ५२ भर वजन वाली बटलोही है उसे तौलवाइये। राजा ने तौलवाया। वह बटलोही केवल ४८ भर वजनवाली रह गयी। उसकी कला देखकर राजा ने उसे पुरस्कार प्रदान किया।

२८. हस्तीश्वरस्य हितोपदेशसम्बन्धे कथा

श्रीपुरे अरिमर्दनभूपस्य हस्तिनां ग्रहणेच्छाऽभूत्। तेन राज्ञा कुञ्जरग्रहणार्थं पुरुषा आदिष्टाः। ततस्ते राजपुरुषा दध्युरिति—यत्र हस्तिनस्तिष्ठन्ति तत्र नलवनं शुष्कं, ग्रीष्मकाले जलं तत्र नास्ति। तेनारघट्टकरणसरणिप्रयोगेण जलं कर्षयित्वा नलवनमारोप्य सिच्यते। ततो नलवनं प्ररूढम्। हरितमयं नलवनं दृष्ट्वा हस्तिनो यूथपतेः पुरः प्रोचुः—नलवनं प्ररूढम्, तत्र गम्यते। नलवनतृणानि भक्ष्यन्ते। ततस्तत्र समीपे समेत्य सरणिप्रयोगेण—पानीयमागच्छत्। प्ररूढं नलवनं दृष्ट्वा हस्तीश्वरोऽपरेषां हस्तिनां पुरः प्रोचुः[1]—ग्रीष्मकाले एवंविधं जलं न दृश्यते। पुरा कदाचिद् दृश्यते चेत्तदा एवंविधानि न तृणानि दृश्यन्ते। तेनात्मनां ग्रहणार्थं केनचित्कूटं कृतमस्ति। अत्र न स्थीयते। तृणानि न भक्ष्यन्ते। एवं यूथपतिना प्रोक्ताः केचिद्यूथपतिप्रोक्तं मन्यन्ते स्म, केचिन्न मन्यन्ते। यैर्हस्तिभिः स्वामिवचः प्रतिपन्नम्, ते सुखिनोऽभूवन्। यैर्न प्रतिपन्नं ते धृता, हता दुःखिनोऽभूवन्।

एवं यैर्गुरुमातृपितृतीर्थकृद्वचो मेने ते स्वर्गादिसुखभाजोऽभूवन्, यैर्गुर्वादिवचो न मेने ते नरकतीर्यग्भवादिदुःखं प्राप्नुवन्।

---

१. 'प्रोवाच' होना चाहिए।

२८. हाथियों के स्वामी की हितोपदेश के सम्बन्ध में कथा

श्रीपुर में अरिमर्दन राजा की इच्छा हाथियों को पकड़ने की हुई। तदनुसार उसने हाथियों को पकड़ने के लिए पुरुषों को आदेश दे दिया। बाद में राजपुरुषों ने इस प्रकार सोचा—जहाँ हाथी रहते हैं वहाँ सरपत का वन सूख गया है। ग्रीष्मकाल का पानी वहाँ नहीं है। इसलिये रहट के माध्यम से जल खींचकर हमलोग सरपत का जंगल लगायेंगे तथा सीचेंगे। इस प्रकार सरपत का वन लग गया। हरा-हरा सरपत का वन देखकर हाथी अपने समूह के प्रमुख से बोले—सरपत का वन लगा (उगा) है, वहाँ जा रहे हैं, सरपत के वन की घासों को हम लोग खायेंगे। इसके बाद वहाँ समीप में पहुँच कर कृत्रिम माध्यम से निकलते हुए जल को तथा जमे हुए सरपत के वन को देखकर हाथियों का प्रमुख अन्य हाथियों से बोला—ग्रीष्मकाल में इस प्रकार इतना जल नहीं दिखाई पड़ता। यदि कदाचित पहले कभी दिखायी पड़ा भी हो तो इस तरह की घासें नहीं दिखायी पड़ी थीं। अतः निश्चित है कि हम लोगों को पकड़ने के लिए किसी ने मायाजाल किया है। इसलिए यहाँ न रहा जाय। घासें न खायी जायँ। इस प्रकार प्रमुख के कहने पर कुछ ने उसका कहना माना, कुछ ने नहीं माना। जिन हाथियों ने स्वामी का कहना माना वे निरापद रहे। जिन्होंने नहीं माना वे पकड़े गये, मारे गये तथा दुखित हुए।

इस प्रकार जिन्होंने गुरु, माता-पिता तथा तीर्थङ्करों का कहना माना है वे स्वर्ग आदि के सुख प्राप्त किये, जिन्होंने गुरु आदि का कहना नहीं माना उन्होंने नरक, पक्षी आदि योनि का दुःख पाया।

२६. घूकस्य पराजयसम्बन्धे कथा

एकदा घूको भुवं पातालं च जित्वा स्वर्गे गतः स्वर्गं जेतुम्। तत्र स्वर्गमुच्चालयितुं घोरं शब्दं कर्त्तुं लग्नः तदा शक्रस्तं तादृशं शब्दं श्रुत्वा पप्रच्छ देवान्। कोऽसौ एवंविधः स्वरः समागतः? देवैः प्रोक्तम्—पातालं पृथ्वीं च जित्वा स्वर्गं जेतुं घूकोऽत्रायातोऽस्ति।

इन्द्रोऽवग्—धीरां[1] दत्वात्राकार्यताम्। तत्रेन्द्रपार्श्वे आनीतः सः, इन्द्रेण पृष्टः—ईदृक्षा भूमण्डले कियन्तः सन्ति? घूकोऽवग्—

अरघट्टो[2] घरट्टश्च[3], लम्बकर्णोऽथ[4] वायसः।
कौशिको[5] रासभश्चैव, षडेते मधुरस्वराः॥

इन्द्रोऽवग्—

एकेनोद्वासितः स्वर्गः, किं पुनः पञ्चभिः सह।
हा हा वज्रमयी पृथ्वी, या न याता रसातलम्॥

इत्युक्त्वा शक्रोऽवग्—गच्छ, अरघट्टघरट्टादिस्वमित्रपार्श्वे नो चेदनेन वज्रेण तव शीर्षं छेत्स्यते। ततः स नष्टः पुनर्भूमण्डले समागात्।

---

१. धीरज

२. रहट

३. चक्की

४. बकरा

५. उल्लू विशेष

२९. उल्लू की हार के सम्बन्ध में कथा

एक बार कोई उल्लू पृथ्वी और पाताल को जीत कर स्वर्ग को जीतने के लिए वहाँ पहुँचा। स्वर्ग के लोगों को डरवाने के लिए भयानक शब्द करने लगा। तब इन्द्रने उस प्रकार के शब्द सुनकर देवों से पूछा—यह कौन है जिसका इस प्रकार शब्द आया (सुनाई पड़ा) है। देवों ने कहा—महाराज ! पाताल और पृथ्वी को जीत कर स्वर्ग जीतने के लिए उल्लू यहाँ आया हुआ है।

इन्द्र ने कहा—आश्वासन देकर उसे यहाँ बुलाओ। वहाँ इन्द्र के पास वह लाया गया। इन्द्रने पूछा—इस प्रकार शब्द करने वाले भूमण्डल पर कितने हैं ? उल्लू बोला—

रहट, चक्की, बकरा, कौवा, उल्लू और गधा ये छः मीठी आवाज वाले हैं।

इन्द्र ने कहा—

एक ने (ही) स्वर्ग को उजाड़ दिया, फिर पाँचों साथ हो जायँ तो क्या कहना है ! हाय-हाय ! पृथ्वी सचमुच वज्र की बनी है, जो कि (इन पाँचों के रहने पर भी) रसातल में नहीं चली गयी।

इतना कहकर इन्द्र बोले—तुम रहट-चक्की आदि अपने मित्रों के पास चले जाओ, नहीं तो इस वज्र से तुम्हारा मस्तक काट दूँगा। इसके बाद वह वहाँ से भाग कर फिर भूमण्डल पर आ गया।

३०. चौर-राक्षसयोर्विवादेन विप्ररक्षा

क्वापि ग्रामेऽतिदरिद्रो विप्रो वसति। तस्य (स्मै) केनापि दयया वृषभयुगलं दत्तम्। तेन च घृत-तैल-यवसादिना प्रह्लीकृतम्[1]। तद् दृष्ट्वा कश्चिच्चौरो रात्रौ बन्धनपाशं गृहीत्वा हर्तुं यावदायाति तावदर्धमार्गे विकरालमूर्ती राक्षसो दृष्टः। ततः स्तेनेन पृष्टम्—को भवानित्युक्ते सत्यवचनोऽहं राक्षसः। भवानपि आत्मानं वदतु। तस्याग्रहे अर्धरात्रौ[2] चौरेणोक्तम्—प्राग्मम हर्तुं देहि। राक्षसोऽप्याहेत्थम्—प्राग्मम भक्षयितुं देहि। ततश्चौरेणोक्तम्—प्रतिशब्देन यदि कश्चित् बुद्धति[3] तदा महान् अनर्थो भविष्यति, आरम्भोऽप्यावयोर्विफलो भविष्यति। इत्थं तयो (विवदतोः) विप्रः प्रतिबुद्धः। चौरोऽप्याह—भोः! त्वामयं भक्षयितुमिच्छति राक्षसः। राक्षस आह—चौरोऽयं गोयुगं ते हर्तुमिच्छति। एवं श्रुत्वा शय्यां मुक्त्वा विप्रोऽवहितो भूत्वा मन्त्रं स्मरन् स्थितः। द्वावपि विफलौ गतौ। अतः—

शत्रवोऽपि हिताय स्यु - र्विवदन्तः परस्परम्।
चौरेण जीवितं दत्तं राक्षसेन तु गोयुगम्॥ १॥

---

१. प्रह्लीकृतम् का अर्थ—वशवर्त्ती करना।

२. अर्धरात्रे।

३. 'बुद्धयते' होना चहिए।

३० चोर और राक्षस के विवाद से ब्राह्मण की रक्षा

किसी गाँव में अतिनिर्धन ब्राह्मण रहता था। किसी ने दया के कारण उसे दो बैल दे दिये। उसने घी, तैल, जौ आदि से (बैलों को) वशवर्ती कर लिया। यह देखकर कोई चोर, बाँधने वाली रस्सी लेकर रात में बैलों को चुराने आ रहा था। आधे रास्ते में भयानक आकारवाला राक्षस दिखाई पड़ा। चोर ने पूछा—'आप कौन हैं ?' उसने कहा—'मैं सत्यवचन नामक राक्षस हुँ। आप भी अपने को बतलाइये।' उसके आग्रह पर उस आधी रात में चोर ने कहा—'पहले मुझे चुराने दो।' राक्षस ने भी इसी प्रकार कहा—'पहले मुझे खाने दो।' तब चोर ने कहा—आवाज से यदि कोई जग जायगा तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा, हम लोगों की काम की शुरुआत भी निष्फल हो जायगी। इस प्रकार उन दोनों में विवाद होते रहने से ब्राह्मण जग गया। चोर ने कहा—'अरे! यह राक्षस तुमको खाना चाहता है।' राक्षस बोला—'यह चोर है, तुम्हारे दोनों बैलों को चुराना चाहता है।' ऐसा सुनकर ब्राह्मण शय्या छोड़कर सावधानी से मन्त्र का स्मरण करने लगा। दोनों ही निष्फल होकर चले गये। इसलिए—

आपस में लड़ने-झगड़ने वाले शत्रु भी हितकारी हो जाते हैं। चोर ने ब्राह्मण के दो बैल दे दिये और राक्षस ने जीवन दे दिया।

३१. नन्दभूप-वररुचयोः स्त्रीवश्यतासम्बन्धे कथा

नन्दो नाम राजा। तस्य सचिवो वररुचिः। तयोः पत्योर्मिथः प्रीतिः। सम्मुखगवाक्षस्थया मन्त्रिपत्न्योक्तम्—अहं प्रधाना एकपत्नीत्वात्। राजपत्न्योक्तं—एवं चेत् त्वं पतिमश्ववत् हेषयन्तं[1] वालय[2]। तस्य च प्रणयकलहेन जाया रुष्टा। भर्त्ताह भद्रे! येन प्रकारेण त्वं तुष्यसि तं वद। तयोक्तं—यदि त्वं शिरो मुण्डयित्वा मेंऽह्रौ पतिष्यसि तदाऽहं तुष्यामि। तथा कृतं वररुचिना। प्रसन्नाऽसौ।

अथ नन्दस्य भार्या तथैव रुष्टा। तेनाप्युक्तम्—प्रिये! प्रसीद। उपायं नः कथय। साऽवग्—अहं तव पृष्ठेऽधिरुह्य[3] त्वां धावयामि। धावितश्चेदश्ववत् हेषसे तदा प्रसीदामि नान्यथा। तथैव कृतं तेनापि राज्ञा।

अथ प्रभातसमये वररुचिरायातः। तं मुण्डितशिरसं दृष्ट्वा राजा पप्रच्छ—भो वररुचे। किमयमपर्वणि[4] मुण्डितं शिरस्ते। सोऽवक्—

न किं कुर्यान्न किं दद्यात्, स्त्रीभिरभ्यर्थितो नरः।
अनश्वा यत्र हेषन्ते, शिरः पर्वणि मुण्डितम्॥

---

१. हेषृ अव्यक्ते शब्दे' धातु का प्रेरणार्थक रूप।

२. 'वलि शब्दे' धातु का प्रेरणार्थक रूप।

३. पृष्ठमधिरुह्य' यह पाठ उचित है।

४. 'किमिदमप०' ऐसा होना चाहिए।

३१. राजा नन्द और वररुचि की स्त्रीपरवशता के सम्बन्ध में कथा

नन्द नामके एक राजा थे। उनका मन्त्री वररुचि था। उन दोनों की पत्नियों में परस्पर बहुत प्रीति थी। सामने की खिड़की पर स्थित मन्त्री की पत्नी ने कहा--'एक पत्नी होने से मैं प्रधान हूँ।' राजा की पत्नी बोली--'यदि ऐसा हो तो तुम पति को घोड़े की तरह हिनहिनाने को कहो।' उसकी (मन्त्री की) स्त्री प्रेम-कलह से रुष्ट हो गयी। पति ने कहा--'भद्रे ! जिस प्रकार तुम सन्तुष्ट होओगी, उसे बोलो। उसने कहा--'यदि तुम सिर मुड़ाकर मेरे पैरों पर पड़ोगे तो मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी।' वररुचि ने वैसा ही किया और वह प्रसन्न हो गयी।

इसके बाद नन्द की पत्नी उसी प्रकार रुष्ट हो गयी। उसने भी कहा--प्रिये ! प्रसन्न हो जाओ और अपने प्रसन्न होने का हमें उपाय बतलाओं। वह बोली--मैं तुम्हारी पीठ पर चढ़कर तुम्हें दौड़ाऊँगी। दौड़कर यदि घोड़े की तरह हिनहिनाओगे तो प्रसन्न हो जाऊँगी, अन्यथा नहीं। राजाने भी वैसा ही किया।

बाद में प्रातः काल वररुचि आया। उसे सिर मुड़ाये देखकर राजा ने पूछा--'किस पर्व के उपलक्ष्य में तुम्हारे सिर का मुण्डन हुआ है ? वह बोला--

स्त्रियों के आग्रह पर मनुष्य क्या नहीं कर सकता और क्या नहीं दे सकता ! घोड़ा न होते हुए भी जहाँ मनुष्य हिनहिनाते हैं, उसी पर्व में सिर का मुण्डन हुआ है।

३२. पादलिप्तसूरेः उचितकथनसम्बन्धे कथा

एकदा गुरौ अन्यत्र गते लघ्ववस्थायां पादलिप्तसूरिः साधुषु गोचरचर्यायां गतेषु बालैः सह क्रीडति। द्रुतं श्राद्धान्[1] आगतान्ज्ञात्वा आकारं संवृत्योपविष्टः। उपदेशो दत्तः। ततस्तेषु श्राद्धेषु गतेषु पुनरवरकमध्ये खेलित यावता, तावता केऽपि वादिनो विज्ञं ज्ञात्वा वादं कर्तुं समाययुः। तैर्विजनं मत्वा "कुकुडकूकू" इति शब्दः कृतः। सूरिणा तु वादिनश्चागतान् ज्ञात्वा "म्याऊं म्याऊं" बिडालशब्दः कृतः। ततस्तैर्वादिभिस्तस्य विद्वत्त्वं ज्ञात्वाऽवसरज्ञत्वं च, पादयोस्तस्य पेतुः प्रोचुश्च चिरंजीव बालभारति !

---

१. श्रद्धेय, आदरणीय।

३२. पादलिप्त सूरि की उचित बोलने के सम्बन्ध में कथा

गुरुजी कभी बाहर चले गये। छोटी उमर में पादलिप्त सूरि बालकों के साथ खेल रहे थे। साधु लोग गाय चराने गये थे। कुछ बड़े लोग आये हैं ऐसा जानकर पादलिप्त सूरि जल्दी से अपने आकार को छिपाकर बैठ गये। उन लोगों को उपदेश दिया। उन लोगों के चले जाने पर पुनः जब छोटे बच्चों के बीच खेल रहे थे तो कुछ शास्त्रार्थी लोग शास्त्रार्थ करने के लिए आये। उन लोगों ने निर्जन स्थान जान कर 'कुकुड़ कू कू' शब्द किया। सूरि ने तो शास्त्रार्थी लोग आये हैं, यह जान कर 'म्याऊँ म्याऊँ' बिल्ली की आवाज की। इसके बाद उन शास्त्रार्थियों ने उनकी विद्वत्ता तथा किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस बात को जानकर पैर पकड़ लिया और कहा—हे सरस्वती के अवतार बालक! चिरञ्जीवी होवो।

३३. श्रेष्ठिपुत्रस्य क्षमोपदेशसम्बन्धे कथा

श्रीपुरे भीमश्रेष्ठिनः पुत्रश्चन्द्रो हट्टे उपविष्टो व्यवसायं कुर्वाणोऽपरवणिग्भिः समं कलिं कुरुते स्म। श्रेष्ठी स्वं पुत्रं निवारयति। ततः स्वपुत्रसम्मुखहट्टस्थवणिजोः कलिं कुर्वाणयोः श्रेष्ठी प्राह—कलिर्न क्रियते, इह परलोकदुखहेतुत्वात्! तथापि तौ कलेर्न निवृत्तौ। ततः श्रेष्ठी मृदुवचाः सूनोः पुरः प्राह—अद्याहं यद्वच्मि तत्त्वया कार्यम्। पुत्रः प्राह—शिक्षां वितर। ततः पिता प्राह—आत्महट्टसमीपस्थो वणिगद्य शुभमशुभं वा यद्वक्ति तत्त्वया क्षन्तव्यम्। पुत्रोऽवग्—तात ते वचः प्रमाणम्। ततः श्रेष्ठिना स्व-पुत्राय तुला हट्टाग्रे मण्डिता। एकस्मिन् पार्श्वे तस्याः सेरो[1] मुक्तः। तदा पार्श्वहट्टस्थो वणिग् गालिं दायं दायं सन्ध्यां यावत् स्थितः। श्रेष्ठिपुत्रस्तु मौनी जातः। सन्ध्यायां श्रेष्ठिनोक्तं—भो पुत्र! तुलाचेल्लकं[2] द्वितीयं किं गालिभिर्भृतं न वा नमितं न वा। पुत्रस्तौ विलोक्याह—तात! यादृशी तुला प्रातर्मण्डिता तथैव धारणयाधुना तुला स्थितास्ति। पिता ततः प्राह—यथा गालिभिस्तुला न भृता तथा गालिभिरप्यात्मनो न लगति। ततः पुत्रोऽवग्—अद्यप्रभृति मया क्षमैव कर्तव्या।

---

१. देशी शब्द है।

२. पलड़ा के अर्थ में देशी शब्द है।

३. 'लगे संगे' धातु है।

३३. क्षमा करने के उपदेश के सम्बन्ध में सेठ के लड़के की कथा

श्रीपुर में भीम नामक सेठ का पुत्र दुकान में बैठकर व्यापार करता हुआ दूसरे दुकानदारों से कलह करता था। सेठ अपने पुत्र को मना कर देते थे। कदाचित् अपने पुत्र की दुकान के सामने के दो दुकानदारों का कलह हो रहा था। सेठ ने कहा—कलह नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे इस लोक में और परलोक में भी दुःख होता है। इतना समझाने पर वे दोनों कलह करना बन्द नहीं किये। मधुर बोलने वाले सेठ ने पुत्र से कहा--आज मै जो कह रहा हूँ उसको तुम्हें करना है। पुत्र ने कहा—आज्ञा दीजिये। तब पिता ने कहा--अपनी दुकान के बगल का दुकानदार आज अच्छा-बुरा जो भी बोले, उसे तुम क्षमा कर देना। पुत्र बोला--पिताजी ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। तब सेठ ने दुकान के आगे अपने पुत्र के लिए तराजू टाँग दिया। तराजू के एक पलड़े में सेर (बटखरा) रख दिया। बगल का दुकानदार दुकान में बैठा हुआ सायंकाल तक गाली देता रहा। सेठ का पुत्र चुप था। साम को सेठ ने कहा—अरे वेटे ! तराजू का दूसरा पलड़ा क्या गालियों से भर गया, या नहीं, नीचे को झुका कि नहीं ? पुत्र ने दोनों पलड़ों को देखकर कहा—पिताजी ! प्रातः काल जिस प्रकार तराजू रखी गयी थी, उसी प्रकार अब भी स्थित है। तब पिता ने कहा—जिस प्रकार गालियों से तराजू नहीं भरी उसी प्रकार अपने को भी गाली नहीं लगती। तब पुत्र ने कहा—आज से मैं क्षमा ही करूँगा।

३४. श्रेष्ठिस्नुषाया बुद्धिमत्तरत्वे कथा

एकदा श्रीपुरात् स्वस्नुषाया आनयनार्थं श्रेष्ठी ययौ। लक्ष्मीपुरे तां स्नुषां गृहीत्वा पश्चादागच्छन् वीरपुरे कस्यचित् श्रेष्ठिनो गृहे वासार्थं गतः। तस्य श्रेष्ठिनः पत्नीद्वयं विद्यते। तदा श्रेष्ठिपत्नी प्रथमा जगौ—अत्र स वासं वसति य आवाभ्यां वादं करोति। तदा श्रेष्ठी स्नुषां प्रत्यवग्, अन्यत्र गृहे गम्यते। ततः स्नुषाऽवग्—भो—श्वसुर। त्वं शय्यायां स्वपिहि, अहं वादं करोमि। ततः श्रेष्ठिनि सुप्ते श्रेष्ठिवधूः तस्थौ यदा तदा तत्रत्य-श्रेष्ठिपत्नी प्रथमा महिषीं दोग्धुमुपविष्टा। ततस्तदा श्रेष्ठिस्नुषा द्वितीयां श्रेष्ठिपत्नीं प्रत्यवग्—किं तवेयं सपत्नी विद्यते ? तयोक्तं—त्वया कथमिदं ज्ञातम् ? श्रेष्ठिस्नुषाऽवग्—तवेयं सपत्नी पृष्टिं[1] दत्त्वा महिषीं दोग्धुमुपविष्टा। ततो मिथोऽत्यन्तं कलिं कर्तुं लग्ने। इति द्वितीययोक्तं—त्वं मम पृष्टिं दत्से। एवं द्वयोः सपत्न्योरेवं स्त्रियोर्विवादं कुर्वत्योः प्रभातं जातम्। ततः श्रेष्ठी चचाल। एवं पुरुषः स्त्रिया बुद्ध्या एवं कार्यं करोति।

१. पींठ अर्थ में देशी शब्द।

३४. सेठ की बहू की बुद्धिमानी की कथा

एक बार श्रीपुर से अपनी बहू लाने के लिए सेठ गया। वहाँ से बहू को लेकर पीछे लौटता हुआ निवास करने के लिए वीर पुर में किसी सेठ के घर गया। उस सेठ की दो स्त्रियाँ थीं। पहली स्त्री ने कहा-यहाँ वही निवास करता है जो हम दोनों से कलह करता है। तब सेठ ने बहू से कहा—दूसरे के घर चला जाय। इस पर बहू बोली—ससुर जी ! आप विस्तर पर सोइये। मैं कलह करुँगी। सेठ के सो जाने पर बहू जागती रही। सेठ की पहली पत्नी भैंस दुहनें बैठ गयी। इधर सेठ की बहू ने उसकी दूसरी स्त्री से कहा—क्या यह तुम्हारी सपत्नी (सौत) है ? वह बोली—तुमने कैसे यह जाना ? सेठ की बहू ने कहा—तुम्हारी यह सपत्नी पीठ देकर (छुपाकर) भैंस दुहने बैठी रही। इसके बाद दोनों सपत्नियाँ आपस में जोरों से कलह करने लगीं। दूसरी पत्नी ने कहा—तुम मुझसे छिपाती हो। इस तरह विवाद करते-करते सबेरा हो गया। तब सेठ चल दिया। इस प्रकार स्त्री की बुद्धि से पुरुष अपना काम बना लेता है।

३५. श्रेष्ठिनः कुपत्नी-कथा

एकस्मिन्ग्रामे श्रेष्ठिनः पत्नी अकथितकारिका विद्यते। इतस्तस्यापणे बहुकालादेकः प्राघूर्णकः[1] समागतः। ततः आगत-स्वागतादि मिथः कृतम्। श्रेष्ठी गृहे गतः प्राह—पत्नि! एकः सुहृद् बहुकालादागतोऽस्ति, यदि त्वं प्राध्वरमार्गेण[2] कार्याणि प्रोक्तानि कुरुषे तदा स आकार्यते जेमनाय। पत्नी प्राह—अग्रे तव कथितानि कारं कारं खिन्नास्मि तथापि कार्यसंख्यां यदि कथय तदा कुर्व्वे। ततः षष्टिकार्यसंख्या कृता। प्राघूर्णको जेमितुमानीतः। तया आचमनादि प्रारभ्य कार्याणि गणितुं मण्डितानि यावत् तावत् तक्रपरिवेषणवेला समायाता। तक्रमेकशः परिवेषितम्। श्रेष्ठिनोक्तं—पुनस्तक्रमानय। ततस्तया स तक्रचुण्डकः[3] पत्युर्मस्तके आहतो भग्नः। श्रेष्ठी कृष्णमुख उत्थाय हट्टे गतः। सुहृदा पृष्टं किं कृष्णमास्यं कृतम्? ततः श्रेष्ठी गृहिणीस्वरूपं प्राह। ततः सुहृत् प्राह—

अनेकानि सहस्राणि, भग्नानि मम मस्तके।
गुणवतीह ते भार्या भाण्डमूल्यं न याचते॥ १॥

मम पत्नी तु भग्ने भाजने वस्त्राञ्चलं तदा मुञ्चते यदा भाण्डमूल्यं दीयते, एवं प्रोच्य सोऽपि स्थिरीकृतः।

---

१. अतिथि।
२. सुगम रीति से।
३. चरुवा, कमोरी।

३५. सेठ की दुष्ट पत्नी की कथा

एक गाँव में सेठ की पत्नी आदेश के विरुद्ध आचरण करती थी। संयोग से बहुत दिनों के बाद एक अतिथि उसकी दुकान पर आया। तब दोनों ने ही परस्पर कृतज्ञता व्यक्त की। सेठ ने घर जाकर कहा--प्रिये! बहुत समय के बाद एक मित्र आया है, अतः यदि तुम सरलता से कहे हुए कार्यों को करो तो भोजन के लिए उसे बुलाऊँ। पत्नी ने कहा--तुम्हारा कहना करते-करते तो मैं पहले से ही खिन्न हूँ तो भी यदि गिनकर कार्यों को बता दोगे तो कर दूँगी। सेठने साठ कार्य करने को कहा और भोजन करने के लिए अतिथिको लिवा आया। पत्नी ने आचमन (मुख धोने) से आरम्भ कर कार्यों को जैसे ही गिनना शुरू कर दिया तब तक मट्ठा (तक्र) परोसने की बारी आयी। एक बार मट्ठा परोस भी दिया। सेठ ने कहा—जरा और मट्ठा ले आओ। तब उसने मट्ठा की कमोरी पति के शिर पटक दी, जिससे वह फूट गयी। सेठ मलिनमुख होकर दुकान पर चला गया। मित्र ने पूछा—मुख क्यों मलिन किये हो? सेठ ने अपनी स्त्री की करतूत बतला दी। इस पर मित्र बोला—

"मेरे शिर पर कई हजार कमोरियाँ फूट गयी हैं। तुम्हारी पत्नी तो उदार है क्योंकि फूटे हुए बरतन का उसने मूल्य नहीं माँगा!

मेरी पत्नी तो बरतन के फूट जाने पर मेरा आँचल तभी छोड़ती है, जब बरतन का मूल्य दे देता हूँ।" इस तरह कहकर अतिथि ने उसे भी आश्वस्त किया।

३६. श्रृगालस्य चातुरीसम्बन्धे कथा

उत्तमं प्रणिपातेन, शूरं भेदेन योजयेत् ।
नीचमल्पप्रदानेन, समशक्तिं पराक्रमैः ॥ १ ॥

क्वापि वने चतुरको नाम श्रृगालः। तेनारण्ये स्वयं मृतो गजो दृष्टः। कठिनत्वात्तं भेत्तुं न शक्नोति। इतश्च सिंह आगतः। सविनयं प्राह—स्वामिन्! त्वत्कृते गजं रक्षामि, तदेनं भक्षयतु स्वामी। सिंह आह—नाहं परहतं भक्षयामि। तवैव प्रसादीकृतः। सिंहे गते व्याघ्र आगतः। तस्य सम्मुखं गत्वाह—मामक मातुल! कथमत्र भवान् मृत्युमुखे प्रविष्टः। येनैष सिंहेन हतः स मां रक्षपालं मुक्त्वा स्नानार्थं नद्यां गतः। मया निर्व्याघ्रं वनं कार्यमित्युक्तमपि तेन सिंहेन। एतावच्छ्रुत्वा भयाद् व्याघ्रो नष्टः।

इतश्च चित्रक[1] आयातस्तस्यापि तदेवोक्तम्—अहं सिंहेन तद्रक्षार्थं मुक्तोऽस्मि, तथापि त्वं किंचिद् भक्षयित्वा शीघ्रं गच्छान्यथा तव प्राणसंशयः। इत्युक्ते सति चित्रकोऽपि भयभीतः पलायिष्ट।

अथ श्रृगाल आगतः। तस्मात्तुल्यं दृष्ट्वा युद्धेन निराकृतः।

---

१. चीता।

३६. श्रृगाल की चतुरता के सम्बन्ध में कथा

अपने से बड़े को प्रणाम से, वीर को भेद द्वारा, नीच को थोड़ा देने से तथा समान बलवाले को पराक्रम से वश में करना चाहिए।

किसी वन में चतुरक नामका श्रृगाल रहता था। उसने जंगल में स्वतः मरे हुए हाथी को देखा। कड़ा होने के कारण उसे काटकर खाने में समर्थ नहीं हो पा रहा था। तब तक सिंह आ गया। श्रृगाल ने विनम्रता से कहा—हे स्वामी! आपके ही लिए इस हाथी की रखवाली करता रहा हूँ, तो अब इसे आप खायँ। सिंह ने कहा—मैं दूसरे के मारे हुए को नहीं खाता हूँ। तुम्हीं प्रसाद लो। सिंह के चले जाने पर बाघ आया। उसके सामने जाकर श्रृगाल ने कहा—मेरे मामा जी! आप मृत्यु के मुख में यहाँ कैसे घुस आये, क्योंकि इस हाथी को सिंह ने मारा है। वह मुझे इसकी रखवाली करने का आदेश देकर नदी में स्नान करने गया है। उस सिंह ने मुझसे कहा भी है कि वन को मैं व्याघ्रों से रहित कर दूँगा। इतना सुनकर भय से व्याघ्र चला गया।

तबतक इधर चीता आ गया। श्रृगाल ने उससे भी वही बात कही। सिंह ने मुझे इसकी रखवाली के लिए नियुक्त किया है, तो भी तुम कुछ खाकर जल्दी चले जाओ, नहीं तो तुम्हारे प्राणों पर संकट आ जायगा। ऐसा कहने पर चीता डर कर भाग गया।

इसके बाद श्रृगाल आया। उसे अपनी बराबरी का देख कर उसने उसे युद्ध से हटा दिया।

३७. वैद्यस्य यथौचित्यसम्बन्धे कथा

यो यादृशो भवति तस्य तादृश उपदेशो दातव्यः। तथाहि—लक्ष्मीपुरे चन्द्रभूपो राज्यं कुरुते। स च दयावान्। एकदा स्वकर्मकर एक इन्धनानि समानयत्। एकाक्षिसमुत्पन्न-फुल्लको[1] दृष्टो राज्ञा। करुणया राज्ञा (तेन) पञ्चशतवैद्य-स्याग्रे प्रोक्तम्—अस्य निःस्वस्य नेत्रात्फुल्लकमपसारय। तेन वैद्येन तदा जीर्णकुटीरतीव्रस्थ[2] जीर्णतृणान्यादाय प्रज्वाल्य च तद्भस्मना तस्य नि [निः] स्वस्य नेत्रमञ्जितम्[3]। द्वित्रिवारे तस्मिन्नञ्जिते नेत्रोत्फुल्लकं गतम्। अन्येद्युर्भूपो निजनेत्रं कृत्रिमफुल्लयुक्तं कृत्वा वैद्यस्याग्रे प्राह—मम नेत्रोत्पन्नं फुल्लकमपसारय! वैद्येन जात्यमुक्ताफलरत्नादि [दीनि] भस्मकृते आनायितम्। राजाऽवग्—नि [निः] स्वस्य नेत्रफुल्लकाऽपसारायान्यदञ्जनं कृतं, मम च बहुमूल्यमौषधं कथम्? वैद्येनोक्तम्—राजन्! त्वं भूपस्तेन बहुमूल्यमौषधम्। नि [निः] स्वस्य तु दरिद्रत्वात्तादृशमेव युक्तम्। ततो राजा यथास्थितनेत्रं कृत्वा प्राह—वर्यं[4] त्वया कृतं, त्वमुचितज्ञोऽसि। ततो वैद्यो वर्यभूषणादिना मानितः।

---

१. फुल्ली, सफेद धब्बा।

२. अर्थ स्पष्ट नहीं है।

३. 'अन्ज् व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु' धातु से क्त प्रत्यय।

४. उत्तम, मनोहर।

३७. वैद्य की "जैसे को तैसे" के सम्बन्ध में कथा

जो जैसा हो उसे वैसा ही उपदेश देना चाहिए।

लक्ष्मीपुर में चन्द्र नामक राजा राज्य करते थे। वे दयालु थे। एक बार उनका एक सेवक लकड़ियाँ ले आया। राजा ने देखा कि उसकी एक आँख में फुल्ली पड़ी है। दया के कारण राजा ने पञ्चशत नामक वैद्य से कहा—इस गरीब की आँख की फुल्ली दूर कर दीजिये। तब उस वैद्य ने जीर्ण कुटी के ओरी (अग्रभाग) वाले तृणों को लेकर और जलाकर भस्म बना लिया। उसी भस्म से उस गरीब के नेत्र में अञ्जन लगा दिया। दो-तीन बार लगा देने पर आँख की फुल्ली समाप्त हो गयी। दूसरे दिन राजा ने अपनी ही आँख को बनावटी ढंग से फुल्ली वाली करके वैद्य जी के आगे कहा—मेरी आँखों में फुल्ली हो गयी है, दूर कर दीजिए। वैद्य ने उत्तम कोटि के मोती, रत्न आदि भस्म के लिए मँगवाये। राजा बोले—निर्धन व्यक्ति की आँख की फुल्ली निकालने के लिए दूसरा अञ्जन बनाये और मेरी दवा बहुमूल्य क्यों हो रही हैं। वैद्य जी ने कहा—आप राजा हैं इसलिए मँहगी दवाई है। गरीब के लिए तो पैसों के अभाव के कारण उसी प्रकार ठीक है। तब राजा अपनी आँख ठीक करके बोले—आपने अच्छा किया, उचित-अनुचित आप समझते हैं। प्रसन्न होकर राजा ने सुन्दर आभूषण आदि से वैद्य जी का खूब सम्मान किया।

३८. धूर्तज्योतिष्कस्य तथ्यप्रकाशनसम्बन्धे कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे टीडाह्वो ज्योतिष्कोऽस्ति। एकदा टीडेन रात्रौ मण्डका:[1] क्रियमाणा रात्रौ छन्नं सुप्तेन गणिता:। प्रातस्तत्रैत्य मण्डकप्रमाणं प्रोक्तं, ततो ज्योतिष्कोऽपि ख्यातोऽभूत्।

एकदा कुम्भकारस्य गर्दभो गत:। तेन धनं दत्वा पृष्टं—मम गर्द्दभ: कदा लप्स्यते? बुधोऽवग्—लभ्यते, रात्रौ गर्द्दभस्थितिं वीक्ष्य प्रातर्जगौ।

अतीव ख्यातिरभूत्तस्य। कस्यचिद् हारो गतस्तेन बुध: पृष्ट:। बुधेन मुद्रिकादासी हारगृहीता [ग्रहीत्री] ज्ञाता, ततो लग्नं मण्डयित्वा हारो वालित:[2]। ततो राज्ञा टीडमञ्जलिमध्ये कृत्वा प्रोक्तम्—किं हस्तमध्येऽस्ति? टीडोऽबुधो यदा न जानाति तदा राज्ञा धृत: प्राह स्वं स्वरूपमिति—

सूतइं सूतइं मण्डा गण्या, राति भमं तइं गादह लाध।
मुद्रडीइं इह हारज गलिओ, हवडां टीडो जोसी ग्रहीओ॥

तत: राजा चमत्कृत:। राजा बुधं तं बहुधन—दानेन सम्मानयामास। बुधोऽवग्—भूप अद्य प्रभृति मया यथा तथा न वक्तव्यम्।

---

१. विशेष प्रकार का मिष्टान्न।

२. 'वलि शब्दे' धातु से णिच् तथा क्त।

३८. धूर्त ज्योतिषी के पोल खुलने के सम्बन्ध में कथा

किसी नगर में टीड नामक एक ज्योतिषी रहते थे। एक बार रातमें मिठाइयाँ बनवायी जा रही थीं जिन्हें टीड ज्योतिषी ने छिपकर सोते हुए गिन लिया। प्रातः काल वहाँ पहुचकर उन्होने मिठाइयों की संख्या बतला दी। इससे ज्योतिषी जी बहुत प्रसिद्ध हो गये।

एक बार कुम्हार का गधा भूल गया। उसने पैसा देकर ज्योतिषी जी से पूछा—मेरा गधा कब मिलेगा? ज्यतिषी जी ने कहा—'मिलेगा।' उन्होंने रात में गधे की तलाश कर प्रातः काल बतला दिया।

उनकी बहुत प्रसिद्धि हो गयी। कभी किसी का हार खो गया, उसने ज्योतिषी जी से पूछा। ज्योतिषी जी ने पता लगा लिया था कि हार चुराने वाली कोई नौकरानी है, अतः लग्न बना करके हार की जानकारी दे दी। कभी राजा ने मुट्ठी में कुछ रखकर टीड ज्योतिषी से पूछा—मेरी मुट्ठी में क्या है? मूर्ख टीड जब नहीं समझ पाये तो राजा ने उन्हें पकड़ लिया। इसपर टीड ने अपनी वास्तविकता इस प्रकार बतलायी—

महाराज! छुपकर सोते हुए मैने मिठाइयाँ गिन ली थीं, रात में घूमकर गधे का पता लगा लिया था, तथा हार किसने लिया है यह मुझे पहले से ही मालूम था। किन्तु मुट्ठी में जो आप लिये हैं उसके बारे में मुझे बिल्कुल पता नहीं है कि आपने उसमें क्या लिया है।

यह सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत धन देकर राजा ने उनका सम्मान किया। ज्योतिषी जी ने कहा—महाराज! आज से मैं इस प्रकार नहीं कहूँगा।

३९. चौराणां स्वतश्चौर्योद्घाटनसम्बन्धे कथा

कश्चिद् व्यवहारी[1] बहुविधरत्नरूप्यादिवस्तुयुतो विदेशं प्रति गच्छन् मार्गे चौरैर्दृष्टः। ते यदा हर्तुं धनं चेलुः तदा स व्यवहारी सम्मुखं तेषामचलत्। प्राह च बुद्ध्या—भवतां यद्विलोक्यते तद् गृह्यताम्। तदा चौरा जगुर्हास्यात्, भवतः सर्वं पश्चादर्प्पयिष्यते। ततो वणिक् प्राह—मम कोऽपि साक्षी क्रियताम्। ततस्ते जगुरयं वनमार्जार एव साक्षी। तदा तेन वणिजा सर्वं वस्तु त्यक्त्वा जल्पयित्वा इदं हेम, इदं रौप्यमित्यादि दत्तम्। ते चौरा हृष्टा वस्तु लात्वा गता रमापुरे। वणिगपि पृष्टौ तस्मिन्पुरे ययौ। भूपश्च मिलित उक्तं च तेन ममैतैश्चौरैः सर्वं वस्तु गृहीतम्। ततो मन्त्रिभिर्भूपादेशादुक्तं—वणिजः पार्श्वे कः साक्ष्यस्ति? वणिजोक्तं-मार्जारोऽस्ति। ततः स वणिग् यदा कृष्णं विडालं गृहीत्वाऽऽगात्तत्र मन्त्रिणां पुरः प्राहा—अयं साक्षी।

ततस्ते चौरा जगुः—स मार्जारो रक्तवर्णोऽभूदयं तु कृष्णवर्णः। ततो मन्त्रिभिरुक्तं—एते चौरा एतस्य धनं हत्वा कूटं[2] जगदुः। ततस्तान् दण्डयित्वा नैगमस्य[3] सर्वं धनं दापितं मन्त्रिभिः।

---

१. सौदागर, व्यापारी।

२. झूठा।

३. सौदागर।

३९. स्वयं चोरी का भेद खुलने के सम्बन्ध में चोरों की कथा

कोई व्यापारी अनेक प्रकार के रत्न, चाँदी आदि वस्तुओं को साथ लिये विदेश जा रहा था। रास्ते में उसे चोरों ने देख लिया। वे चोर जब उसका धन हरण करने के लिए चले तो वह व्यापारी भी उन लोगों की ही ओर चल पड़ा और उसने बुद्धिमानी से कहा—आप लोग जो देख रहे हैं वह सब ले लीजिये। तब चोरों ने हँसी करते हुए कहा—बाद में हमलोग आपको सब लौटा देंगे। इस पर सौदागर ने कहा—मेरे लिए किसी को गवाह बना दीजिये। चोरों ने कहा—यह जंगली विडाल ही गवाह है। तब उस व्यापारी ने सभी वस्तुओं को रख दिया तथा यह सोना है, यह चाँदी है आदि कहकर दे दिया। वे सब चोर प्रसन्न होकर वस्तुएँ लेकर रमापुर चल दिये। व्यापारी भी पीछे-पीछे उस नगर में गया। राजा मिले। उसने कहा--इन चोरो ने मेरा सब सामान ले लिया। अनन्तर राजा के आदेश से मन्त्रियों ने कहा--व्यापारी के पास इसका क्या सबूत है (कौन गवाह है)? व्यापारी ने कहा—विडाल है। अनन्तर वह व्यापारी जब काले विडाल को लेकर आया और उसने मन्त्रियों के सामने कहा कि यह गवाह है, तब उन चोरों ने कहा--वह विडाल लाल रंग का था, यह तो काले रंग का है। तब वास्तविकता को समझ मन्त्रियों ने कहा—ये सब चोर इस व्यापारी का धन चुराकर झूठ बोल रहे हैं। अन्त में उन सबों को दण्डित करके मन्त्रियों ने व्यापारी को उसका सब धन दिला दिया।

४०. जामातॄणां श्वसुरालये व्यामोहकथा

एकस्य विप्रस्य चतस्रः पुत्र्योऽभूवन् । ताश्च परिणायिताः पृथग् ग्रामे । एकदा चत्वारोऽपि जामातर आकारिताः । भक्तिः पक्वान्नादिदानात् सदा तेषां क्रियते । एकोऽपि तेषु जामाता न चलितुमिच्छति । ततो दिने-दिने बहु धनं भक्षितं ज्ञात्वा तान् चालयितुं भग्नभाजनानि जेमितुं मण्डितानि । तत उत्थाय चित्रशालाया[1]मुपविष्टाः । गोविन्दोऽवग्-चल्यते, अपमानं कृतं श्वशुरेण । ततः समुत्कलयित्वा[2] पत्नीं नीत्वा चचाल, "भग्नभाजनो गोविन्दः ।" यदा न त्रयश्चलन्ति— तदा श्वशुरेण तैलं परिवेषितं, ततः माधवनामा सोऽपि अपमानं ज्ञात्वा चलितः "तिलतैलेन माधवः ।" ततो द्वावपि न चलतः ततस्तृणशय्या प्रस्तारिता, ततस्तमपमानं ज्ञात्वा विक्रमश्चचाल "विक्रमस्तृणशय्यायाम् ।" ततो—गागिलो यदा न चलति ततो गले धृत्वा कर्षितः—"अर्धचन्द्रेण गागिलः ।"

भग्नभाजनो गोविन्दः, तिलतैलेन माधवः ।
विक्रमस्तृणशय्यायाम् अर्धचन्द्रेण गागिलः ।। १ ।।

एवं चत्वारोऽपि जामातरो गताः । एवं जीवाः संसारे कर्मपराभवं दृष्ट्वा वैराग्यभाजः केचिद् भवन्ति ।

---

१. बैठका ।

२. बुलाकर ।

४०. दामादों की ससुराल में व्यामोह की कथा

एक ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थीं। उसने उन सबों का अलग-अलग ग्राम में विवाह कर दिया था। एक बार चारों दामादों को बुलाया। वह उन्हें पकवान आदि खिला-पिलाकर उन लोगों की हमेशा सेवा करता रहा। एक भी दामाद वहाँ से जाना नहीं चाहता था। अतः ब्राह्मण ने सोचा कि ये लोग धीरे-धीरे बहुत धन खा गये। उन लोगों को वहाँ से हटाने के लिए वह टूट-फूटे पात्रों में भोजन परोसवाने लगा। पहला दामाद गोविन्द था। उसने कहा—'मैं तो जा रहा हूँ क्योंकि ससुर जी ने अपमान किया है।' अपनी पत्नी को बुलाकर साथ में ले वह चल दिया। जब शेष तीन दामाद नहीं जा रहे थे तो ससुर ने तेल परोसवा दिया, जिससे माधव नामक द्वितीय दामाद भी अपमान समझ कर चल दिया। इस प्रकार दो तो चले गये किन्तु अभी दो दामाद नहीं जाना चाहते थे। अतः ब्राह्मण ने घास-फूस का विस्तर लगा दिया। इससे विक्रम नामक तीसरा दामाद अपना अपमान समझकर चल दिया। अब केवल गागिल नाम का चौथा दामाद डटा रहा। ब्राह्मण ने गला पकड़कर उसको एक तरफ कर दिया, जिससे वह भी चला गया। इस प्रकार —

टूटे-फूटे पात्र में भोजन परोसने के कारण गोविन्द चल दिया, तिल का तेल परोसने पर माधव चल दिया, घासफूंस का विस्तर लगाने से विक्रम चल दिया और गला पकड़ कर ढकेलने से गागिल चल दिया।

ब्राह्मण के इन उपायों से चारो दामाद चले गये। इसी तरह कुछ जीव इस संसार में अपने कर्तव्य से अपने को परास्त देखकर विरागी हो जाते हैं।

४१. पथिकस्य कूपे कम्बलपातनसम्बन्धे कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे बहवः कूपवाहका[1] गोधूमान् वपन्ते[2] स्म। अत्रावसरे कश्चित् पथिकस्तस्मिन् मार्गे समागात्। तेन जलयन्त्रघट्या जलं पीत्वा प्रोचे—भोः कूपवाहकाः! कः कूपमध्ये एता जलघटीर्जलैः पूरयति? ततस्तैः कूपवाहकैः प्रोक्तं हसद्भिः—भवत्पिता घटीर्भरति! पथिकोऽवग्—यदि मम पिता घटीर्भरति तन्न शीतं लगन् [द्] भावि! ततस्ते प्रोचुरतो निजपितुः शीतरक्षायैएका कम्बलिका [किं] न दीयते? ततः प्राह—तर्हि इयं कम्बलिका कूपे मया शीतरक्षायै क्षिप्यमाणाऽस्ति। एवं प्रोच्य कम्बलिकां क्षिप्त्वा गतः। ततो यदा गोधूमा निष्पन्नाः तदा ते विभागोकर्तुं लग्नाः। ततः पथिकः प्राह—मम पित्रा कूपाज्जलं कर्षितमस्ति। ममापि भागः कर्तव्योऽस्ति। ततो विवादं कृत्वा राजकुले स्वं भागं याचते स्म! तदा सर्वैरप्युक्तं—कूपे कम्बलिका तेन क्षिप्ता, अतोऽस्यापि गोधूमभागो दीयताम्। ततः सोऽपि गोधूमभागं प्राप।

---

१. कुआं से पानी काढ़ने वाले।

२. 'वप् बीजसन्ताने'।

४१. कुएँ में कम्बल गिराने के सम्बन्ध में पथिक की कथा

किसी नगर में बहुत-से लोग कुऐ से पानी निकाल कर गेहूँ बो रहे थे। इसी समय कोई राहगीर उसी मार्ग से जा रहा था। उसने रहट का पानी पीकर कहा—अरे जल निकालने वालों ! कुएँ के भीतर कौन है जो इन घड़ों में पानी भरता है ?' हँसते हुए पानी निकालने वालों ने कहा—आपके पिता जी घड़ों को भरते हैं।' पथिक बोला—यदि मेरे पिता जी घड़ा भरते हैं तो क्या उन्हें पानी में ठण्डक नहीं लगती होगी ? उन लोगों ने कहा—'तो ठण्ढक से सुरक्षा के लिए एक कम्बल क्यों नहीं दे देते ?' पथिक बोला—ठण्ढक से रक्षा के लिए यह कम्बल कुएँ में डाल दे रहा हूँ। ऐसा कहकर वह कम्बल को कुएँ में फेककर चला गया। जब गेहूँ की पैदावार हुई तो वे .सब अपना-अपना हिस्सा बाँटने लगे। पथिक भी आया। उसने उन लोगों से कहा—'मेरे पिता जी ने कुएँ से पानी निकाला है। मेरा भी इसमें भाग दीजिये।' उन लोगों ने स्वीकार नहीं किया। इससे विवाद हो गया। राजदरबार में जाकर वह पथिक अपने भाग की माँग करने लगा। तब सभी लोगों ने कहा—'इसने कुएँ में कम्बल डाला है, अतः गेहूँ में से इसको भी हिस्सा मिलना चाहिए। अन्ततो गत्वा पथिक ने भी गेहूँ का अयना भाग प्राप्त कर लिया।

४२. भिल्लस्य स्तैन्यात् निवृत्तिसम्बन्धे कथा

श्रीपुराच्चन्द्रपुरं प्रति श्रीधरा आचार्याश्चेलुः। मार्गे भिल्लघाटी मिलिता। भिल्लस्वामी सर्वं सार्थं[1] लुण्ठयामास[2]। ततः साधून् लुण्ठयितुं तत्रागतः प्राह—भो साधवः वस्त्राणि मुञ्चथ (त)। तदा गुरवो जगुः—स्तैन्यं न क्रियते, पापहेतुत्वात्। मार्गे कस्यापि धनं नापह्रियते। भिल्लोऽवग्—वस्त्राणि मुञ्चथ (त) नोचेत् हता एव। गुरुः प्राह—त्वं पापं करोषि, सर्वं कुटुम्बं भक्षयिष्यति, श्वभ्रे[3] त्वमेव बहुदुःखस्य भोक्ता भविष्यसि। स्तेनोऽवग्–सर्वं कुटुम्बं विभज्य भोक्ष्यति। गुरुः प्राह—तर्हि पृच्छ कुटुम्बं प्रथमं, पश्चाद्वस्त्राणि गृहाण। यावत्त्वमागमिष्यसि तावद्वयं स्थिताः स्म। ततो भिल्लोऽचिरात् स्वकुटुम्बं प्रष्टुं गतः। प्रथमं भार्या पृष्टा—अहं साधूनां वस्त्राणि लास्यामि। तस्य पापस्य भागं त्वं ग्रहीष्यसि? प्रिया प्राह—तवैव पापं भविष्यति। अहं भागं न ग्रहीष्ये। एवं कुटुम्बं पृष्टम्। कोऽपि पापभागं न गृह्णाति। ततो भिल्लो गुरुपार्श्वेऽभ्येत्यावग्—कुटुम्बं पापं न लाति। गुरुः प्राह—'यः कर्ता स एव भोक्ष्यति'। ततः स भिल्लः स्तैन्याकरणे नियमं जग्राह। ततोऽभिग्रहं[4] प्रपाल्य भिल्लः स्वर्गे ययौ।

---

१. उपयोगी, मालदार।

२. 'लुण्ठ स्तेये'।

३. गड्ढा, नरक।

४. नियम।

४२. भिल्ल की चोरी से निवृत्ति के सम्बन्ध में कथा

आचार्य श्रीधर श्रीपुर से चन्द्रपुर को चले। रास्ते में डाकुओं की घाटी पड़ी। डाकुओं के सरदार ने उनके सभी उपयोगी सामान लूट लिये। पुनः वह साधुओं को लूटने के लिए वहाँ आया और बोला—'अरे साधुओं ! अपना-अपना वस्त्र उतार दो। इस पर आचार्य श्रीधर ने कहा—चोरी नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे पाप होता है। रास्ते में किसी का धन नहीं छीनना चाहिए। डाकू बोला—'अपना-अपना वस्त्र उतार दो, नहीं तो अपने को मरा ही समझो। गुरु जी ने कहा—तुम पाप कर रहे हो, लोग तो इससे अपना पेट भरेंगे, किन्तु नरक में गिरकर तुम्हें ही बहुत कष्ट भोगना पड़ेगा। डाकू बोला—मेरे पाप को भी परिवार के सब लोग बाँटकर भोगेंगे। गुरु जी ने कहा—'तो पहले अपने परिवार से इस सम्बन्ध में पूछो, बाद में वस्त्र लेना। तुम्हारे यहाँ लौटने तक हम लोग यहीं पर रहेंगे। डाकू तुरत अपने परिवार से पूछने गया। पहले स्त्री से पूछा--मैं साधुओं का वस्त्र ले आऊँगा। उससे जो पाप होगा उसमें तुम हिस्सा बटाओगी न ! पत्नी ने कहा—तुम्हें ही पाप लगेगा, मैं उसमें हिस्सा नहीं बटाऊँगी। इस प्रकार पूरे परिवार से पूछा। कोई भी पापभागी बनने को तैयार नहीं हुआ। तव डाकू गुरुजी के पास पहुँचकर बोला--परिवार अपने ऊपर पाप नहीं लेना चाहता। गुरुजी ने कहा--'पाप को जो व्यक्ति करता है वही भोगता है। फलस्वरूप डाकू ने लूटने का कार्य बन्द कर दिया। इस प्रकार लूट-पाट छोड़कर अन्त में वह डाकू स्वर्ग पहुँच गया।

४३. ब्राह्मणस्य छागत्यागसम्बन्धे कथा

बहुबुद्धिसमायुक्ताः, सुविज्ञातबलोत्कटाः ।
शक्ता वञ्चयितुं धूर्त्ता, छागकं ब्राह्मणादिव ॥ १ ॥

कोऽपि ब्राह्मणो भ्रमन् यजमानाच्छागं प्राप्य यागार्थं गृहे आगच्छति । छागो मन्दगतिस्तेन ब्राह्मणेन समर्थत्वात् स्कन्धे कृतः । अत्रान्तरे त्रयो धूर्ता मार्गे मिलिताः सम्मुखा बभूवुः । तैश्च मिथ उक्तम्—अहो अस्य पशोश्छागस्य कया बुद्धया रक्षा विधीयते । इति विचिन्त्य एकेन मार्गं परिवर्त्य अग्रे भूत्वोक्तम्—भो ब्राह्मण ! किमिदं विरुद्धमनुष्ठीयते—यदेष सारमेयोऽपवित्रः स्कन्धारूढः कृतः । तेनोक्तम्—किमन्धोऽसि त्वं पान्थ ? यच्छागस्य सारमेयत्वं वक्षि । सोऽवक्—भो ! मा कुरु कोपं, मार्गे गच्छ ।

अथ द्वितीयेनाग्रे भूत्वोक्तमिदम्—भो ! यद्यपि वल्लभोऽयं मृतवत्सः, तदपि स्कन्धे कर्त्तुं न युक्तम् । अथासौ ब्राह्मणः सकोपमाह—किमन्धोऽस्ति भवान् यत्पशोर्वत्सत्वं वदसि । भगवन् ! मा कुरु कोपं मार्गे गच्छ ।

पुनस्तृतीयेनाप्यग्रे भूत्वोक्तमिदं—भो रासभं स्कन्धारूढं कथं नयसि ? अथ ब्राह्मणेन चिन्तितम्—पशुरूपेण राक्षसोऽयं मम यजमानेन दत्तो यत एनं पृथक् पृथग्रूपं लोकाः पश्यन्ति । इति विचार्य तेन छागस्त्यक्तः ।

४३. ब्राह्मण द्वारा बकरा छोड़ देने के सम्बन्ध में कथा

जो धूर्त नाना प्रकार का विवेक रखते हैं तथा छल-छद्म से परिपूर्ण होते हैं वे किसी को भी आसानी से ठग लेते हैं जैसे ब्राह्मण से बकरे को ठग लिया।

कथा इस प्रकार है—

इधर-उधर घूमता हुआ कोई ब्राह्मण यजमान से एक बकरा प्राप्त कर, मैं इसी से यज्ञ करूँगा, यह सोचते हुए घर की ओर लौट रहा था। बकरा धीरे-धीरे चलता था इस लिए ब्राह्मण ने उसे अपने कन्धे पर लाद लिया। आगे चलने पर तीन धूर्त रास्ते में मिले, सामने हो गये और उन लोगों ने आपस में कहा—'अरे! इस बकरे को किस प्रकार बुद्धि लगाकर रक्षा कर रहा है। ऐसा विचार कर एक ने रास्ता बदल कर ब्राह्मण के आगे होकर कहा— 'अरे बाबा जी! यह आप क्या उल्टा काम कर रहे हैं—यह कुत्ता तो अशुद्ध है, और आप इसे कन्धे पर रखे हैं। ब्राह्मण ने कहा— 'अरे पथिक! तुम अन्धे हो क्या? बकरे को कुत्ता कह रहे हो?' वह बोला—'अरे! क्रोध मत कीजिये, अपने रास्ते जाइये।'

पुनः दूसरा आगे होकर बोला—अरे! यह मरा हुआ बछड़ा यद्यपि बहुत प्यारा मालूम पड़ रहा है, तो भी कन्धे पर लादना ठीक नहीं है।' यह सुनकर ब्राह्मण बड़े क्रोध से बोला—'आप अन्धे हैं क्या, जिससे इस पशु को बछड़ा बना रहे हैं? उसने कहा—'पण्डित जी! मेरे पर क्रोध मत कीजिये, जहाँ जाना हो जाइये।'

फिर तीसरे ने भी आगे होकर कहा—अरे! गदहे को कन्धे पर क्यों ढो रहे हो? ब्राह्मण सोचने लगा—'निश्चित ही यजमान ने बकरे (पशु) के रूप में मुझे राक्षस दिया है, क्योंकि लोग इसे अलग-अलग रूपमें देख रहे हैं।' ऐसा विचार करके उसने बकरे को छोड़ दिया।

४४. धूर्तशिष्यस्य परिव्राज्वञ्चने कथा

देवपुरे देवशर्म्मा परिव्राट् धनी वसतिस्म। स च कस्यापि न विश्वसिति धनगमनभयात्। एकदा धूर्त आषाढभूतिस्तत्रागतो मिलतिस्म। तस्य प्राह—संसारोऽसारो मया-दृष्टस्तेनाऽहं कस्यापि तापसादेः शिष्यो भविष्यामि। जीवितं तु तृणाग्नितुल्यं, लक्ष्मीश्चपला, संयोगास्तु पक्षिण इव। ततो देवशर्म्मणा वैरागी[1] मत्वा दीक्षितः, स्वशिष्यः कृतः। परं द्रव्यगमनभयात्तं मढीद्वारे शाययति रात्रौ। क्रमादाषाढभूतिना तस्य पार्श्वे धनभृता वासनिका ज्ञाता, लातुं तां ववाञ्छ।

एकदा देवशर्माणमभ्येत्य यजमानः प्राह—अहं चन्द्रपुरे बहून् जनान् जेमयिष्यामि। धनं च दास्यामि तेभ्यः। अतस्तत्र पादावधारयध्वम्। ततस्तद्वचो मानितम्। अन्यदा देवशर्म्मा शिष्ययुतश्चचाल। तां वासनिकां वस्त्रैर्वेष्टयित्वा चलति। अत्रान्तरे नदी, समागता। देवशर्म्मा जगौ-इदं शंबलं[2] विद्यते तेन त्वं गृहाण, अत्र तिष्ठाहं मलोत्सर्गं कृत्वा समेष्यामि शीघ्रम्। देवशर्मणि गते आषाढ़भूतिस्तां लात्वा नष्टः। देवशर्मा तु हुडयोर्युद्धं विलोकयन् यावत्तत्रागतः तावत्तं शिष्यमदृष्ट्वा दुःखं चक्रे। मया मौढ्यादीदृशः शिष्यः कृतः।

---

१. देशी शब्द है।

२. पाथेय, राहखर्च।

४४. धूर्त शिष्य की संन्यासी को ठगने की कथा

देवपुर में देवशर्मा नामक धनवान् संन्यासी रहता था। अपने धन की चोरी के भय से वह किसी का विश्वास नहीं करता था। एक बार आषाढ़भूति नाम वाला एक धूर्त वहाँ आकर मिला और संन्यासी से उसने कहा—'मैंने समझ लिया है कि यह संसार सार-रहित है, इसलिए मैं किसी तपस्वी-संन्यासी का शिष्य बनना चाहता हूँ। जिन्दगी तो घास-फूस में लगी अग्नि की तरह क्षणिक है, धन-लक्ष्मी चंचल है और एक-दूसरे का मिलना भी पक्षियों की तरह है।' उसकी इन बातों को सुनकर देवशर्मा ने उसे संसार से विरक्त मान कर दीक्षा दे दी और अपना शिष्य बना लिया। किन्तु रुपया-पैसा की चोरी के भय से उसे दरवाजे पर ही रात को सुलाया। इस प्रकार रहते-रहते आषाढ़भूति ने उस संन्यासी की रुपयों की वसनी (थैली) जान ली। उसे पाने को वह आतुर हो गया।

एक बार यजमान देवशर्मा के पास आकर कहने लगा—चन्द्रपुर में मैं बहुत लोगों को भोजन कराऊँगा और उन्हें धन भी दूँगा। इसलिए वहाँ आप पधारें। उन्होंने यजमान की बात मान ली। देवशर्मा शिष्य के साथ चल दिया। वह पैसे वाली अपनी थैली को कपड़े से लपेटे हुए था। इसी बीच एक नदी मिली। देवशर्मा ने कहा—यह राह-खर्च है, इसे तुम पकड़ लो, यहाँ रुके रहो। मैं शौच होकर जल्दी ही आता हूँ। देवशर्मा के चले जाने पर आषाढ़भूति उसे लेकर नौ-दो ग्यारह हो गया। देवशर्मा तो बकरों का युद्ध देख रहे थे। जब वहाँ आये तो शिष्य को न देखकर बहुत दुखी हुए और कहा—मूढतावश मैंने ऐसा शिष्य बना लिया !

४५. वैद्यानां परीक्षणसम्बन्धे कथा

वीरपुरे भूपडनृपस्य वैद्यानां पञ्चशतानि विद्यन्ते। तस्य चैको मणको[1] राज्ञो मनो रञ्जयति। सर्वान् वैद्यान् विदुषम्मन्यान् दृष्ट्वा मणको वैद्यस्योपान्ते गत्वा नालिकेरमेकं तस्मै ददौ, प्राह च—ममातीव शिरोर्त्तिर्विद्यते, स्फेटय त्वं, ततस्तेनौषध [प्र] योगः प्रोक्तः। एवं प्रच्छन्नं सर्वेषां वैद्यानां गृहेषु गत्वा नालिकेरं दत्त्वा शिरोर्त्तिस्फेटनविषये पृथक्पृथगौषधं जज्ञे। सर्वेषां वैद्यानामुक्तान्यौषधानि कागदे लिलेख मणकस्तेषां हस्तेभ्यः, ततो राज्ञोऽग्रे प्राह मणकः स्वं कृतम्। एते वैद्याः किमपि न जानन्ति। ततो भूपोऽवक्— भो वैद्याः यूयं किं सम्यग् रोगस्वरूपं न जानीथ? तैरुक्तम्—अस्माभिर्ज्ञायते सम्यक्। ततो मणको वैद्यलिखितौषधमयं कागदं राज्ञा [ज्ञोऽ] ग्रे मुक्त्वाऽवग्—मम रोगस्य स्वरूपं न ज्ञातं, कथमन्येषां नृणां ज्ञास्यति? अहं मुधा दण्डितोऽस्मि भवद्भिः। एवं लोका अपि दण्ड्यन्ते। मम शिरोर्त्तिस्वरूपं न ज्ञातम्। ततो राजाऽवग्—अस्य मणकस्य यद् गृहीतं तद्दशगुणं ददत, नो चेन्न छुट्टिष्यते[2]। ततोऽखिलैर्वैद्यैर्दशगुणं प्रत्यर्पितम्।

---

१. अस्पष्टार्थ।

२. देशी शब्द।

४५. वैद्यों की परीक्षा के सम्बन्ध में कथा

वीरपुर में पाँच सौ वैद्य थे। एक ऐसा आदमी (मनई) था जो राजा का मनोरञ्जन किया करता था। सभी वैद्य अपने को विद्वान् मानते हैं, ऐसा निश्चय कर उस आदमी ने एक वैद्य के पास जाकर नारियल का फल दिया और कहा—मेरे सिर में जोरों का दर्द है, आप इसे ठीक कर दें। तब वैद्य ने दवा करने का तरीका बताया। इसी प्रकार छुपकर सभी वैद्यों के घर जाकर और नारियल का फल देकर उसने सिर दर्द ठीक कराने के लिए अलग-अलग दवा जान ली। उस आदमी ने सभी वैद्यों की दवाओं को उन्हीं के हाथ से लिखवा लिया था। इसके बाद उसने राजा के आगे अपनी बात कही—ये वैद्य कुछ नहीं जानते। इस पर राजा ने कहा—अरे वैद्यों! तुम लोग भलीभाँति रोग का लक्षण नहीं समझ पाते हो क्या? उन लोगों ने कहा—महाराज! हम लोग अच्छी प्रकार जानते हैं। तब उस आदमी ने, वैद्यों ने जिस कागज पर दवा लिखी थी, उस कागज को राजा के आगे खोलकर कहा—मेरे रोग का लक्षण तो इन लोगों ने नहीं जाना तो दूसरे लोगों के रोगों को कैसे पहचानेंगे? आप लोगों ने मुझे व्यर्थ ही परेशान किया है। इसी तरह सब लोग परेशान होते हैं। मेरे सिर की पीड़ा का लक्षण आप लोग नहीं समझ पाये। इसके बाद राजा ने कहा—इस आदमी का जो कुछ भी आप लोगों ने दवा बताने में ले लिया है, उसका दस गुना दीजिये, नहीं तो आप लोगों को नहीं छोड़ा जायगा। तब सब वैद्यों ने दस गुना लौटा दिया।

४६. सिंहस्य स्वार्थसाधनसम्बन्धे कथा

एकस्यां गुहायां उंदिरो[1] महांस्तिष्ठति। अन्यदा तत्र विवातगुहायां[2] सिंहः समागात्। वर्यं स्थानकं दृष्ट्वा तत्र तिष्ठति, उंदिरः सिंहस्योपरि हिंडन् कर्करान्[3] पातयति। सिंहस्तं हन्तुं न शक्नोति ततो दध्यौ, मया हन्तुं न शक्यते, यतो बिडालं विना उन्दिराः हन्तुं न शक्यन्ते। ततः सिंहो बिडालपार्श्वे गत्वाऽवग्, ममैको वैरी उन्दिरो विद्यते, तं त्वं यदि हंसि तदा तुभ्यं भक्ष्यं ददामि। ततः सदा सिंहो बिडालाय मांसं दत्ते। यदा हन्तुं उन्दिरं याति, तदा पत्नी प्राह, त्वयोत्तरः सदा कार्यः। यदा उन्दिरो हतस्ततस्तव किमपि नार्पयिष्यति। एवं बहवो दिना गताः[4]। एकदा भार्यया वार्यमाणोऽपि गत उन्दिरं हन्तुम्। बिडालेनोंदिरो हतः। ततो बिडालो भक्ष्यं मार्गयितुं यदा गतः तदा सिंहः प्राह—अद्य त्वम् आगतो मां मांसं मार्गयितुं, यदि कल्ये समेष्यसि तदा हत एव। त्वं गच्छ स्वस्थाने। ततो बिडालः स्वपत्नीपार्श्वे गतो यदा तदा पत्नी प्राह—

निजार्थं निखिलो लोकः सेवतेऽन्यं निरन्तरम्।
अतो जीवितमिच्छेश्चेत् तदा तत्र व्रजाद्य मा॥ १॥

---

१. चूहा
२. निवास, शून्य।
३. कंकड़
४. बहूनि दिनानि गतानि।

४६. सिंह के स्वार्थ साधने के सम्बन्ध में कथा

किसी गुफा में एक बड़ा भारी चूहा रहता था। कभी उस सुनसान गुफा में सिंह आया। सुन्दर स्थान देखकर वहीं रहने लगा। इधर चूहा सिंह के शरीर पर कूदता रहता तथा कंकड़ गिराता रहता था। चाहने पर भी सिंह उसे नहीं मार पा रहा था। अतः वह सोचने लगा—मैं तो इस चूहे को नहीं मार पाऊँगा, क्योंकि बिल्ली के अतिरिक्त चूहों को कौन मार सकता है? इसके बाद सिंह बिल्ली के पास गया और उससे बोला—'मेरा वैरी एक चूहा है। यदि उसको तुम मार दोगे तो तुम्हें मैं खाने-पीने का सामान दूँगा।' तभी से सिंह ने बिल्ली को मांस देना शुरू कर दिया। जब बिडाल चूहे को मारने के लिए चला तो उसकी पत्नी ने उससे कहा—तुम चूहे को मारना मत वल्कि टाल-मटोल करते रहना, क्योंकि जब चूहा मर जायगा तब तुमको सिंह कुछ भी नहीं देगा। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। एक बार स्त्री के मना करने पर भी वह चूहे को मारने चला गया। उसने चूहे को मार डाला। जब वह अपने खाने के लिए मांस माँगने गया तो सिंह बोला—आज तो तुम भले ही मांस माँगने आ गये किन्तु यदि कल आये तो अपने को मरा ही समझना। तुम अपने घर जाओ।

बिडाल अपनी पत्नी के पास जब गया तो पत्नी बोली—सारा संसार स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ही दूसरे का सहारा लेता है। अतः यदि जीना चाहते हो तो आज वहाँ मत जाना।

४७. पद्यपठनेन भोजराजस्य रक्षा

एकदा एको विप्रः पुराद् बहिर् देहचिंतार्थं गतः। तदा एको वृषः शंडो वृक्षं स्कन्धेन घर्षयति। पुनः कर्णौ-उत्पाट्य विलोकयति च। तदा विप्रेणोक्तम्—"घसइ घसावइ कि रे मारिसि कान, टहरी टहरी जोइ छइ कि नासिसिरे"[1]। एतच्छ्रुत्वा शंडो नष्टः। ततः सः विप्रः स्वकृतं पदद्वयं भूपाग्रे प्राह शंडगमनं च। ततो राज्ञा सहस्रं द्रम्माणां[2] दत्त्वा तस्मै, तस्मात् पदद्वयं गृहीतम्। अत्रान्तरे वैरिणा भूपेन नापितः कलावान् सुकुमारहस्तोऽङ्गमर्दनकुशलो भोजमारणाय प्रहितः। स च भूपस्य मिलितः। वयं तं मत्वा भूपेन रक्षितः। भूपस्य शरीरे संवाहनां[3] करोति। एकदा राजा सुप्तस्तदा स मुहूर्त्तमेकं राज्ञः पदयोः संवाहनां कृत्वा भूपं हन्तुं क्षुरकं तेजयति। पुनर्भूपस्य सम्मुखो भूत्वा कर्णौ दत्त्वा विलोकयति सचिन्तः। राजा तं तथाविधं कर्म कुर्वाणं दृष्ट्वा प्राह—

"घसइ घसावइ कि मारिसि रे कान, टहरी टहरी जोइ छइ कि नासिसिरे" ?—एतदुक्तं भूपस्य श्रुत्वा स नापितश्चकित आत्मकृत्यं ज्ञातं विदन् भूपस्य पदयोः पतित्वा प्राह—अहमभाग्यवान् यत्त्वं हन्तुं वाञ्छितो मया। राज्ञोक्तं-किं त्वया हन्तुं वांछितः, अभयं दत्तम् ? ततः स नापितः प्राह—अहं चन्द्रभूपेन त्वां हन्तुं प्रेपितः त्वयाहं ज्ञातः। ततो राजा तं विसर्ज्य तं वैरिणं जिगाय।

---

१. देशी भाषा का पद

२. एक प्रकार का सिक्का

३. दबाना

४७. पद्य पढ़ने से भोजराज की रक्षा

एक बार एक ब्राह्मण जीविकोपार्जन के लिए नगर से बाहर निकला। रास्ते में उसने देखा कि एक साँड़ (बैल) अपने कन्धे से वृक्ष को रगड़ रहा हैं तथा कानों को खड़ा करके देख रहा है। ब्राह्मण ने कहा—(देशी पद)

यह सुनकर साँड़ वहाँ से हट गया। तब उस ब्राह्मण ने स्वरचित दो पद्य राजा के सामने सुनाये और साँड़ के भाग जाने की भी बात कही। राजा ने एक हजार रुपये (दमड़ी) उस ब्राह्मण को देकर दोनों पद्य ले लिये।

कभी किसी शत्रु राजा ने भोज को मारने के लिए एक ऐसे कलाकार हजाम को भेजा जिसके हाथ अत्यन्त कोमल थे तथा वह हाथ-पैर दबाने में निपुण था। वह हजाम भोजराज से मिला। राजा ने उसे गुणी समझकर अपने यहाँ रख लिया। हजाम भोजराज का शरीर दबाया करता था। एक बार राजा सो गये तो वह राजा के पैर थोड़ी देर दबाकर, उन्हें मारने के लिए छुरा तेज करने लगा। पुनः राजा के सामने हो कान लगाकर चिन्ता से देखने लगा। राजा ने इस प्रकार चेष्टा करते हुए उसे देख कर कहा—(देशी पद)

राजा की बात सुन कर वह हजाम घबड़ा गया कि राजा ने मेरी करतूत जान ली। अतः वह उनके पैरों पर गिर कर कहने लगा—मैं बड़ा अभागा हूँ, क्योंकि मैं आपको मारना चाहता था। राजा ने कहा—आखिर क्यों तुम मुझे मारना चाहते थे, निडर होकर बतलाओ। तब वह हजाम बोला—चन्द्र राजा ने आपको मार डालने के लिए मुझे भेजा था, आपने मुझे जान लिया।

बाद में भोज ने उस हजाम को छुट्टी दे दी और उस शत्रु राजा को जीत लिया।

४८. मनोनियन्त्रणे तापसकथा

एकस्मिन् पुरे चन्द्रो भूपो राज्यं करोति स्म। तत्र पुराद्बहिरेकस्तापसस्तपस्तपन् नारीमुखं न वीक्षते कदाचित्! यदा चतुः पञ्चाष्टाद्युपवासे पारणकं समायाति तदा लोकैरभ्यर्थितो लोकगृहे पृथक् पृथक् पारणकं चक्रे। एकदा स भूपेन पारणकायाभ्यर्थितः भूपगृहे पारणकं कर्तुं गतः। भूपेन भक्तिः कृता वर्याहारदानात्। ततो राज्ञा बहुमानतो वर्यसुखासनारूढः स्वस्थानकं प्रति चचाल राजमार्गे। इतोऽकस्मात्तस्य कामलता पण्यस्त्रीः सम्मुखं मिलिता। तापसो नेत्रे निमीलयामास। ततस्तया तस्य शीर्षे दशार्द्धपूजा[1] कृता। ततः स सद्यः पश्चाद्वलितो, राज्ञो ज्ञापितं वेश्याऽवहेलनस्वरूपम्। ततो वेश्या साऽऽकारिता राज्ञा पृष्टा च–त्वया कथमेष ऋषिर्दशार्द्ध-पूजया पूजितः। सा प्राहऽयमेव पृच्छ्यताम्। ततः स पृष्टः प्राह—मयाऽस्याः सम्मुखमागताया नेत्रे निमीलिते। ततस्तयोक्तम्—

आंखिम मीचिसि मिचि मन, नयनि निहालो जोइ।
जइ यन मीचिसि आपणउं, अवर न वीजी कोइ॥

मनो यदि नियन्त्रितं तदा नेत्रे अपि वशीकृते यतः—

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः।
अत एव मनो वाढं, नियन्त्रणीयमन्वहम्॥

ततः स तापसो मनो नियन्त्र्य मृत्वा स्वर्गे गतः।

---

१. थप्पड़ मारना।

४८. मन के नियन्त्रण के सम्बन्ध में एक तापस की कथा

एक नगर में चन्द्र राजा राज्य करते थे। वहाँ नगर से बाहर एक तपस्वी तप कर रहा था। वह स्त्रियों को नहीं देखता था। जब चार, पाँच, आठ आदि दिनों का उपवास हो जाता तो पारणा करता था। लोग जब प्रार्थना करते थे तो लोगों के घर पर अलग-अलग पारणा किया करता था। एक बार उस तपस्वी से पारणा के लिए राजा ने प्रार्थना की। तदनुसार वह वहाँ पहुँचा। राजा ने खूब खिला-पिलाकर अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट की। इसके बाद वह तपस्वी श्रेष्ठ वाहन पर सुखपूर्वक बैठकर राजमार्ग से अपने निवास-स्थान की ओर चल पड़ा। अचानक कामलता नामक वेश्या सामने दिखाई पड़ी। तपस्वी ने आँखें बन्द कर लीं। इसपर नाराज होकर उसने जोरों से सिर पर थप्पड़ मारा। तपस्वी ने तुरत लौट कर राजा से अपनी अवहेलना की बात कही। तब राजा ने उस वेश्या को बुलाया और पूछा—तुमने इस तपस्वी को थप्पड़ से क्यों मारा ? उसने कहा—इन्हीं से पूछिये। तब तपस्वी ने कहा—मेरे सामने जब यह दिखाई पड़ी तो मैंने आँखें बन्द कर लीं। इस पर वेश्याने कहा—यदि मन नियन्त्रण में है तो आँखें भी वश में हो जाती हैं। क्योंकि मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। अतः मन को ही नियन्त्रण में रखना अच्छा होता है।

बाद में वह तपस्वी मन को नियन्त्रण में रख कर मरने के बाद स्वर्ग चला गया।

४६. क्रोध-मान-माया-लोभविषये भूप-वणिमंत्रि-विप्र-कथा

एकस्मिन् पुरे चतुरशीतिचतुर्हट्टश्रेणिषु[1] यद्विलोक्यते तल्लभ्यते। राजा च चन्द्रः, मन्त्री च सोमः। श्रेष्ठिनः सामन्ता वणिक्पुत्रादयो बहवः सन्ति च। यद्यद्वस्तु तत्रायाति तत्तत्सर्वं लोकैर्गृह्यते इति ख्यातिः सर्वत्राऽभूत्। तदा भीमपुराधीशेन कमलेन परीक्षार्थं क्षारपुञ्जादिभिरष्टौ[2] शकटानि भृत्वा प्रेषितानि। तस्मिन्पुरे लोका वस्तु ग्रहीतुं समागताः। क्षारपुञ्जादि दृष्ट्वा यदा लोकाः पश्चाद्वलिरे तदा वस्तुस्वामिभिः प्रोक्तम्—अपराण्यपि शकटान्यानीतानि सन्ति, तेषु यद्वस्तु विद्यते तद् गृह्यताम्। लोका जगुस्तानि दर्शयत। ततस्तैरुक्तं—शकटद्वये मानोऽस्ति। शकटद्वये क्रोधोऽस्ति। शकटद्वये लोभोऽस्ति। शकटद्वये मायाऽस्ति। यदि भवद्भिर्वस्तु न गृह्यते तदा युष्माकं पुरस्य ख्यातिर्गमिष्यति। तदा बहुभिर्लोकैर्मिलित्वा चत्वारि क्रोधमानमायालोभशकटानि गृहीतानि। द्रव्यं दत्तं जल्पितम्। ततः सायं स्थितं शकटचतुष्टयं राजद्वारे नीतम्। तैः प्रोक्तम्—यद्येतानि शकटानि पश्चाद्यास्यन्ति तदा पुरस्यास्य ख्यातिर्गमिष्यति। ततो लोभशकटं राज्ञा गृहीतं, ततो भूपा अतृप्ता जाताः। मायाशकटं वणिग्भिर्गृहीतं ततो मायावन्तो वणिजो जाताः। मानशकटं मन्त्रिभिर्गृहीतं, ततो मन्त्रिणो मानिनो जाता, यतो मन्त्रिणो जगत्तृणं मन्यन्ते। क्रोधशकटं विप्रैर्गृहीतमतस्तेषामतीव क्रोधोऽभूत्।

---

१. चौहट्टा।

२. राख–देशी शब्द।

४९. क्रोध, मान, माया एवं लोभ के विषय में राजा, बनिया, मन्त्री और ब्राह्मण की कथा

एक नगर में ८४ चौहट्टे थे जिनमें जो भी लोग चाहते थे, मिल जाता था। वहाँ चन्द्र नाम का राजा था और सोम नाम का मन्त्री। सामन्त लोग थे, सेठ थे तथा बनियों के बहुत लड़के भी थे। वहाँ जो भी सामान आता था उसे सब लोग ले लेते थे ऐसी प्रसिद्धि सब जगह फैल गयी थी। तब भीमपुर के राजा कमल ने परीक्षा करने के लिए आठ गाड़ियों को भर कर भेजा, जिनमें राख की ढेर थी। उस नगर में लोग सामान लेने आये। राखों की ढेर देखकर जब लोग पीछे लौटने लगे तो सामान के मालिकों ने कहा—और भी गाड़ियाँ आयी हैं, उनमें जो सामान है उसे ले लीजिये। लोगों ने दिखलाने को कहा। तब उन लोगों ने कहा—दो गाड़ियों में मान (अभिमान) है, दो गाड़ियों में क्रोध है, दो गाड़ियों में लोभ है तथा दो गाड़ियों में माया है। यदि आप लोग सामान नहीं लेंगे तो आपके नगर की प्रसिद्धि समाप्त हो जायगी। तब बहुत लोगों ने मिलकर क्रोध, मान, माया और लोभ की गाड़ियों को ले लिया। जितना सबको मूल्य बतलाया था, वह भी दे दिया। पुनः शेष चार गाड़ियों को वे लोग सायंकाल राजा के दरवाजे पर ले गये और कहे—यदि ये गाड़ियाँ पीछे लौटेगीं तो इस नगर की प्रसिद्धि समाप्त हो जायगी। तब राजा ने लोभवाली गाड़ी ले ली, जिससे राजा लोग हमेशा के लिए असन्तुष्ट हो गये। मान (अभिमान) की गाड़ी मन्त्रियों ने ले ली, जिससे मन्त्री लोग अभिमानी हो गये। क्योंकि मन्त्री लोग संसार को तिनका की तरह मानते हैं। माया की गाड़ी बनियों ने ले ली, जिससे बनियाँ मायाजाल वाले हो गये। क्रोध की गाड़ी ब्राह्मणों ने ले ली, जिससे वे लोग बहुत क्रोधी हो गये।

५०. अविद्यकथा

बभूव मिथिलादेशे तीरभुक्तौ रविधरो नाम ब्राह्मणः। स मूर्खो धनाढ्योऽपि सर्वैरुपहस्यमानः परमदुःखितश्चिन्तयामास—

"मृषा वदति लोकोऽयं ताम्बूलं मुखभूषणम्।
मुखस्य भूषणं पुंसः स्यादेकैव सरस्वती ॥"

तदिदानीं मम वृद्धस्य विद्याभ्यासोऽनुपपन्न एव। ततः पुत्रं पाठयामीति परामृश्य पण्डितद्वारा धनापत्तयेण मनधरनामानं पुत्रं पाठयामास। पश्चात्तस्य सहाध्यायिभिर्मनधर इत्यव्युत्पन्नं नाम श्रुत्वा पठितम्—

"प्राप्नोतु नाम पाण्डित्यं पुत्रः पित्र्यं प्रयत्नतः।
ज्ञातं पितुरपाण्डित्यं नामधारणकारणात् ॥"

ततस्तेनैवावमानेनाध्ययने कृतयत्नः स मनधरः शास्त्रपारगामी बभूव। पश्चादधिगतशास्त्रस्य तस्य पुत्रस्य गुणदर्पेण राजसम्मानवासनया पुत्रेण सह ब्राह्मणो राजधानीं जगाम। तत्र च कृतराजदर्शनः कुशलप्रश्नानन्तरं राज्ञा पृष्टम्। राजोवाच—"विप्र कथय वार्त्ताम्।" विप्र उवाच—"ज्ञा नो नास्ति मेव।"

५०. अविद्य कथा

मिथिला देश में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम रविधर था। रविधर बड़ा धनाढच था। पर उसमें एक बड़ा दोष यह था कि उसमें वाक्‌पटुता नहीं थी। इसी कारण लोग उसपर समय-समय पर हँसा करते थे, जिससे वह हमेशा चिन्तित रहा करता था। एक दिन उसने अपने मन में यों सोचा--

'ताम्बूल (पान) मुख की शोभा को बढ़ाता हैं ऐसा लोग व्यर्थ ही कहते हैं। क्यों कि मुख की शोभा को बढ़ाने वाली तो केवल एक सरस्वती ही है।'

अब क्या करना उचित है ? यदि मैं अब से विद्या का अभ्यास शुरू करूँ तो यह ठीक नहीं, क्योंकि अब मेरी अवस्था दूसरी हो गयी। मैं बूढ़ा हो गया, इस अवस्था में विद्या का अभ्यास उचित नहीं। इसलिए इस समय मुझे उचित तो यह है कि मैं अपने पुत्र को पढ़ाऊँ। ऐसा विचार करके रविधर ने पण्डितों के द्वारा अपने पुत्र मनधर को पढ़वाया जिसमें रविधर का धन भी कम न हुआ। जब मनधर पढ़ने लगा तब उसके सहपाठी गण ने उसके 'मनधर' इस अव्युत्पन्न (अशुद्ध) नाम को सुनकर निम्नलिखित पद्य पढ़ा—

"चाहे यह विप्रपुत्र प्रयत्न से पिता के पाण्डित्य को भले ही प्राप्त कर ले, परन्तु इसके पिता की मूर्खता पुत्र के नामकरण से ही जानी जा सकती है।"

सहपाठियों के इस अपमान ने मनधर को विद्याध्ययन में खूब उत्तेजित किया और अपने अनवरत परिश्रम के बल से थोड़े ही दिनों में वह शास्त्रपारगामी हो गया। इस प्रकार अपने पुत्र की शास्त्र-पारगामिता देख रविधर को बड़ा दर्प हो गया। वह राजसम्मान की इच्छा से अपने पुत्र को साथ में लेकर झट राजा के यहाँ पहूँच गया और राजा से भेंट की। दर्शन तथा कुशल प्रश्न के पश्चात् राजा ने पूछा—"हे विप्रदेव ! कहिए क्या हाल है ?" यह सुनकर रविधर बोला—"ज्ञानोनास्तिमेव" अर्थात् मुझे ज्ञान नहीं है।

तदाकर्ण्य राजानं स्मेराननं दृष्ट्वा सज्जना नम्राननना बभूवुः। खलाश्च सुतरां जहसुः। तदनन्तरं मनधर उवाच—"हे दुर्जनाः! कुतो मम पितरं हसथ। अनधिगताभिप्रायाः सर्वे निगृहीता यूयम्। मम पित्रा तु साधूक्तं यद्देव प्रस्तुतप्रश्नोत्तरे मम "ज्ञा नास्ति मेव" लक्ष्मीरिव। यथा नः (मम] लक्ष्मीर्न विद्यते तथा ज्ञाऽपि न विद्यते। एवं मितभाषित्वाद्वार्त्ताकथनसामर्थ्यं स्वकीयं स्वयं च भिक्षार्थित्वं मम पित्रा दर्शितम्। तदाकर्ण्य राज्ञा सपरितोषेण महती पूजा कृता तस्य मनधरदशर्मणो ब्राह्मणस्य। उक्तश्च—साधु मनधर! साधु। अस्थाने स्थानं कृतवानसि। एवं सति मनधरस्य पाण्डित्यं तत्पितुश्च मूर्खत्वमेव निर्धारितं सर्वैः।

यह सुनते ही राजा के चेहरे पर ईषत् हास्य की झलक भासित होने लगी। यह देखते ही सज्जन जन मुंह झुका लिये पर खलवर्ग ने अपने अट्टाहास से सभाभवन को गुञ्जित कर दिया।

यह देख मनधर को क्रोध हुआ। वह बोला—"हे दुर्जनों! क्या यह उचित है कि हमारे पिता के कहने का अभिप्राय बिना समझे ही उनकी हँसी उड़ाओ। अब लो तुम्हारा पराजय है। क्योंकि तुमने मेरे पिता के कहने का तात्पर्य नहीं समझा। वह यह है कि हे देव! 'नः = मम, ज्ञा नास्ति मा इव' अर्थात् जिस प्रकार मेरे पास धन नहीं है, मैं दरिद्र हूँ, उसी प्रकार मुझमें बुद्धि भी नहीं है। इस प्रकार भिक्षार्थी मेरे पिता ने मितभाषी होने के कारण वार्ता-कथन में अपना असामर्थ्य तथा अकिञ्चनत्व प्रदर्शित किया है। मेरे पिता का "ज्ञा नो नास्ति मेव" यह वाक्य किसी प्रकार अशुद्ध नहीं है। यह सुनकर वह राजा मनधर के चमत्कार से बड़ा सन्तुष्ट हुआ और कहा कि "हे मनधर! तू सचमुच बड़ा विद्वान् है क्योंकि तूने अप्राप्य स्थान में अपना स्थान बना लिया है।"

ऐसा कहकर उसने मनधर का बड़ा सम्मान किया और ऐसा करने से मनधर का पाडित्य और उसके पिता की मूर्खता ही सबको ज्ञात हुई।

५१. हासविद्या-कथा

बभूव काञ्चीनाम राजधानी। तस्यां सुप्रतापो नाम राजा। तत्रैकदा कस्यापि धनिकस्य धनं चोरयन्तश्चत्वारश्चौराः सन्धिद्वारि प्रशास्तृपुरुषैः प्राप्ताः शृङ्खलेन बध्वा राज्ञे निवेदिताश्च। राजा च घातकपुरुषानादिदेश "रे रे घातकपुरुषाश्चतुरोऽपि चौरानेतान्नगराद्बहिर्नीत्वा शूलमारोप्य मारयत।"

ततो राजाज्ञया घातकपुरुषैस्त्रयश्चौराः शूलमारोप्य हताः। चतुर्थेन चिन्तितं यत्—

"प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते।
उपाये सफले रक्षा भवत्येव न संशयः॥"

चौर उवाच—"रे रे घातकपुरुषास्त्रयश्चौरा युष्माभिर्हता एव। इदानीं राजाग्रे मद्वचनं श्रावयित्वा मां मारयत यतोऽहमेकां महतीं विद्यां जानामि। मयि मृते साऽस्तं यास्यति। राजा तु तां गृहीत्वा मां मारयतु। तेन विद्या मर्त्यलोके तिष्ठेत्"।

घातका ऊचुः—"रे चौर पुरुषाधम! वधस्थानमानीतोऽसि। किमतोऽपि जीवितुमिच्छसि? कां विद्यां जानासि? कथं वा तवाधमस्य विद्या भूपालेन ग्रहीतव्या?"

५१. हासविद्यकथा

काञ्ची नाम की एक राजधानी थी। उसमें सुप्रताप नाम का राजा राज्य करता था। एक समय चार चोर उस नगर के किसी एक धनवान् मनुष्य के घर में धन चुराने के अभिप्राय से घुसे। जब वे पर्याप्त धन चुराकर घर से बाहर निकल रहे थे, राजा के प्रशास्तृ पुरुषों ने उनको सेंध के द्वार पर पकड़ लिया और उनको सांकल से कसकर बाँध राजा के पास पेश किया। यह देख राजा ने चाण्डालों को उन चारों चोरों को शूली पर चढ़ाकर मार डालने के लिए आदेश दिया।

इसके पश्चात् चाण्डालों ने राजा के आदेस से तीन चोरों को शूली के ऊपर चढ़ाकर मार डाला, अब रह गया एक चोर। उसने यह देखकर यों सोचा—"नर के निकट यदि मृत्यु हो तो भी वह रक्षा का यत्न अवश्य करे। क्योंकि उपाय के सफल होने पर रक्षा होती ही है, इसमें संशय नहीं।"

यह सोचकर उस चोर ने घातकों से कहा—"हे घातकों! तुमने तो तीन चोरों को मार ही डाला, अब सिर्फ मैं ही रह गया हूँ। इसलिए तुम राजा के पास जाकर उससे मेरी एक विनती सुनाओ, तत्पश्चात् मुझको मार डालना। जाकर अपने राजा से कहो कि मैं एक बड़ी विद्या जानता हूँ। मेरे मर जाने पर उसका अन्त सा हो जायेगा। इसलिए पहले राजा मुझसे वह विद्या सीख ले। फिर मेरा मरना तो निश्चित है ही। यदि कहीं ऐसा किया गया तो समझ लो कि वह विद्या इस मर्त्यलोक में रह सकेगी। अन्यथा इसका अन्त ही समझो।"

चौर उवाच—"रे घातकाः ! किं ब्रूथ, राजकार्यबाधां कर्त्तुमिच्छथ ? यदि राजा ज्ञास्यति तदावश्यं तेन ग्रहीतव्या महतीयं विद्या, किं च विद्यावार्ताकथकेभ्यो युष्मभ्यमपि प्रभुणा प्रसादः कर्त्तव्यः ।"

ततस्तस्य चौरस्य वचनैः स्वामिकार्यानुरोधेन घातकैः सा वार्ता राज्ञे निवेदिता । राजा च कौतुकमाकर्ण्य चौरमाहूय पप्रच्छ । राजोवाच—"रे कां विद्यां जानासि ?" चौर उवाच—"देव ! सुवर्णकृषिं जानामि ।" राजोवाच—"का परिपाटी ?" चौर उवाच—"देव ! सर्षपपरिमाणानि सुवर्ण-बीजानि कृत्वा भूमावुप्यन्ते । मासमात्रेण सर्षपसदृशा एव कन्दल्यो भवन्ति । देवः प्रत्यक्षं पश्यतु" । राजोवाच—"चौर ! सत्यमेतत् ?" चौर उवाच—"देवस्य पुरतः कस्या-सत्यभाषणे शक्तिः ? यदि मम वचनं व्यभिचरति तदा मासान्ते ममाप्यन्तो भविष्यति । तदाऽपि देवः शास्तिकरणे च प्रभुरेव स्थास्यति ।" राजोवाच—"भद्रम् ! वप सुवर्णम् ।

यह सुन घातकों ने कहा—"रे अधम चोर ! तू बधस्थान में लाया गया है। क्या यहाँ आकर भी तुझे जीने की अभिलाषा है। भला तू ही बता, तेरे समान अधम से हमारा राजा वह विद्या कैसे सीख सकता है।" यह सुन चोर कुम्भीलक ने कहा कि—"हे भाई घातकों ! तुम राजकार्य में बाधा डालो यह तुमको उचित नहीं। तुम पक्का विश्वास रखो कि राजा को यदि कहीं यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो वह यह विद्या बिना सीखे कदापि न रहेगा और यह भी विश्वास रखो कि जो कोई यह खबर राजा को सुनावेगा वह भी राजा से विना पूरा पारितोषिक पाये न रहेगा।"

यह सुनकर घातकों ने यह वृत्तान्त जानकर राजा से कह सुनाया। यह वृत्तान्त सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने झट उस चोर को बुला लिया और पूछा—"रे चोर ! बता, तू कौन सी विद्या जानता है ?" चोर ने कहा—"हे देव ! मैं सुवर्ण की खेती जानता हूँ"। यह सुनकर राजा ने कहा—"अच्छा ! बता उसकी परिपाटी क्या है ? चोर बोला—"हे सरकार ! पहले सरसों के बराबर सोने के बीज बनाये जाते हैं। फिर उन्हें जमीन में बो देते हैं। जब एक मास व्यतीत हो जाता है तब वे बीज सरसों के समान अंकुरों के रूप में परिणत हो बाहर उग आते हैं। महाराज ! अभी इसकी परीक्षा क्यों नहीं कर डालते।" यह सुनकर राजा बोला—"रे चोर ! क्या यह सच है।" यह सुनकर चोर बोला—"भला किसकी ताकत है कि महाराज के सामने मिथ्या भाषण कर दे। यदि कहीं मेरा कहना झूठा हुआ तो मास के अन्त में मेरा भी मरण होगा ही। उस समय भी शासन कर्ता महाराज ही रहेंगे।" यह सुनकर राजा ने कहा—"बहुत अच्छा ! लो सोना बोओ।"

ततश्चौरः सुवर्णं दाहयित्वा सर्षपमात्राणि बीजानि कृत्वा राजान्तःपुरक्रीडासरसस्तटे परमनिगूढस्थाने भूपरिष्कारं कृत्वा बभाषे—राजोवाच—"देव! क्षेत्रबीजे सम्पन्ने, वप्ता कश्चिद् दीयताम्।" त्वमेव किं न वपसि? "चौर उवाच—यदि सुवर्णवपने ममैवाधिकारो भवति तदा किमहं दुःखी भवामि। किं तु सुवर्णवपने चौरस्याधिकारो नास्ति। येन कदाऽपि किमपि न चोरितमस्ति स वपतु। देव एव किं न वपति? राजोवाच—"मया चारणेभ्यो दातुं तातचरणानां धनं चोरितम्।" चौर उवाच—"तर्हि मन्त्रिणो वपन्तु।" मन्त्रिण ऊचुः—"वयं राजोपजीविनः कथमस्तेयिनो भवामः।"

चौर उवाच—"तर्हि धर्माधिकारी वपतु।' धर्माध्यक्ष उवाच—"मयाऽपि बाल्यदशायां मातुर्मोदकाश्चोरिताः।' चौर उवाच—"यूयं सर्वेऽपि चौराः। कथमहमेव मारणीयोऽस्मि?" तच्चौरवचनं श्रुत्वा सभासदः सर्वे जहसुः। राजाऽपि हास्यरसापनीतक्रोधो विहस्याऽह—"रे चौर! न मारणीयोऽसि। हे मंत्रिणः कुबुद्धिरपि बुद्धिमानयं चौरः हास्यरसप्रवीणश्च। ततो ममैव सन्निधाने तिष्ठतु, प्रस्तावे मां हासयतु मोदयतु च। ततः स चौरो राज्ञा स्वसन्निधाने धृतः।

आज्ञा पाते ही चोर ने सोने को जलाया और सरसों के समान बीज बनाकर राजा के अन्त:पुर के क्रीडासरोवर के किनारे गुप्तस्थान में जमीन को जोत गोड़कर तैयार किया और राजा से कहा–"हे देव ! खेत तथा उसके बीज तैयार हैं अब एक बोने वाला दीजिये।" यह सुन राजा ने कहा—"अरे चोर ! तू क्यों नहीं बो डालता ?" चोर—"हे देव ! मुझ चोर को सोना बोने का अधिकार रहता तो मैं दु:खी ही क्यों रहता ? सोना बोने का अधिकारी वही है जिसने कभी किसी की कोई वस्तु न चुराई हो। तो महाराज ही क्यों नहीं बो डालते ?" यह सुनकर राजा ने कहा—"रे चोर ! मैंने चारणों को देने के लिए अपने पूज्य पिता का धन चुराया था।"यह सुनकर चोर बोला—"तो मन्त्रियों को ही आदेश हो जाय कि वे बोवें।" "यह सुनकर मन्त्रियों ने कहा कि—"रे भाई चोर ! हम राजा के उपजीवी हैं फिर हम बिना चोरी के रहें, यह कब सम्भव है।"

यह सुनकर चोर ने धर्माधिकारी से कहा—"महाराज ! आप ही कृपा करके इन बीजों को बो डालिये।" यह सुनकर धर्माधिकारी बोले—"रे चोर ! मैंने भी अपनी बाल्य अवस्था में अपनी माता के कुछ लड्डू चुराये थे।

यह सुनकर चोर बोला—"आप सभी चोर ही निकले। फिर क्यों मैं ही अकेला मारा जाऊँ ?" यह सुनते ही सब सभासद खिलखिला कर हँस पड़े। राजा का भी क्रोध जाता रहा। वह हँसकर बोला—"रे चोर ! ले अब तू न मारा जायगा। हे मन्त्रियों ! इसमें सन्देह नहीं कि यह चोर कुबुद्धि है तथापि यह बुद्धिमान् तथा हास्य रस में बड़ा प्रवीण है। इसलिए मेरे ही आश्रम में रहकर समय-समय पर हँसाकर मुझको आनन्दित किया करे।" वैसा ही किया गया।

पद्यभागः

१. मूर्खवणिक्पुत्रकथा

मुग्धबुद्धिरभूत् कश्चिद् आढ्यस्य वणिजः सुतः ॥
जगाम स वणिज्यायै कटाहद्वीपमेकदा ।
भाण्डमध्ये च तस्याभून् महानगुरुसंचयः ॥
विक्रीतापरभाण्डस्य न तस्यागुरु तत्र तत् ।
कश्चिज्जग्राह तद्वासी जनो वेत्ति न तत्र तत् ॥
काष्ठिकेभ्यस्ततोऽङ्गारान् दृष्ट्वापि क्रीणतो जनान् ।
स कालागुरु दग्ध्वा तद् अङ्गारानकरोज्जडः ॥
विक्रीयाङ्गारमूल्येन तदागत्य ततो गृहम् ।
तदैव कौशलं शंसन् स ययौ लोकहास्यताम् ॥

२. मूर्खकृषककथा

बभूव कश्चिद् ग्रामीणो भूतप्रायः कृषीवलः ॥
स कदाचित् तिलान् भृष्टान् भुक्त्वा स्वादूनवेत्य तान् ।
भृष्टानेवावपद् भूरींस्तादृशोत्पत्तिवाञ्छया ॥
भृष्टेषु तेष्वजातेषु नष्टार्थं तं जनोऽहसत् ।

१. मूर्ख बनिये के पुत्र की कथा

किसी एक धनी बनिये का मन्दबुद्धि एक पुत्र था। एक बार वह व्यापार करने के लिए कटाह नामक द्वीप गया। उसके विक्रेय सामानों में अगरू (एक विशेष प्रकार का सुगन्धित द्रव्य) अधिक था। उसकी अन्य वस्तुएँ तो बिक गईं, पर अगरु को किसी ने नहीं लिया। क्यों कि वहाँ का कोई भी व्यक्ति नहीं जानता था कि अगरू क्या है ? इसी समय उसने देखा कि लकड़हारे से बहुत लोग कोयला खरीद रहे हैं। अतः उस मूर्ख ने अपने उत्तम अगरू को जलाकर कोयला बना दिया तथा वह उहें कोयले की दर बेंचकर घर लौट आया। अपने इस सफल कार्य-कुशलता की प्रशंसा करता हुआ वह लोगों की हँसी का पात्र बना।

२. मूर्ख किसान की कथा

कोई एक गवार किसान था जो प्रायः खेती से जीवन-यापन करता था। उसने एकबार भूने तिल खाये। तिल बहुत ही अच्छे लगे। अतः उसने सोचा कि इन तिलों को बोने से ऐसे ही सुस्वादु तिल जमेंगे। इस विचार से उसने भूने हुए तिल बोये। पर वे नहीं जमे। अब उसके भूने तिल भी समाप्त हो गये और बोये तिल भी नहीं जमे। अतः वह लोगों की हँसी का पात्र बना।

३. मूर्खपूजककथा

मन्दबुद्धिरभूत् कश्चित् पुमान्निशि स चैकदा ।
प्रभाते देवतापूजां करिष्यन्नित्यचिन्तयत् ॥
उपयुक्तौ मम स्नानधूपाद्यर्थं जलानलौ ।
स्थापयामि तदेकस्थौ तौ शीघ्रं प्राप्नुयां यथा ॥
इत्यालोच्याम्बुकुम्भान्तः क्षिप्त्वाग्निं संविवेश सः ।
प्रातश्च वीक्षते यावद् गतोऽग्निर्नष्टमम्बु च ॥
अङ्गारमलिने तोये दृष्टे तस्याभवन्मुखम् ।
तादृगेव सहासस्य लोकस्यासीत्पुनः स्मितम् ॥

४. मूर्खपतिकथा

बभूव कश्चित्पुरुषो मूर्खो मूढमतिः क्वचित् ॥
स भार्यां चिपिटघ्राणां गुरुं चोत्तुंगनासिकम् ।
दृष्ट्वा तस्य प्रसुप्तस्य नासां छित्त्वाग्रहीद् गुरोः ॥
गत्वा च नासिकां छित्त्वा भार्यायास्तामरोपयत् ।
गुरुनासां मुखे तस्या न च तत्रारुरोह सा ॥
एवं भार्यागुरू तेन छिन्ननासौ कृतावुभौ ।

३. मूर्ख पूजक की कथा

कोई एक मन्दमति पुरुष था। एक बार उसने रात्रि में सोचा कि प्रातः देवता की पूजा करनी है तथा इस कार्य में स्नान के लिए जल और धूप देने के लिए अग्नि आदि की आवश्यकता होती है। अतः इन दोनों को एक जगह रख देता हूँ कि शीघ्र ही इन्हें प्रातः प्राप्त कर सकूँ।

यह विचार कर उसने घड़े को जल से भर आग भी उसी में रख दी। प्रातः जब उसने देखा तो आग बुझी थी और जल समाप्त था। अङ्गार से मलिन जल को देखकर उसका भी मुख उसी तरह मलिन हो गया। क्यों कि जिस किसी ने भी इस मूर्खता पूर्ण काम को सुना, वह हँसने लगा।

४. मूर्ख पति की कथा

किसी स्थान पर कोई मूर्ख एवं मन्दमति पुरुष था। उसकी पत्नी की नाक चिपटी थी और उसके गुरु की नाक ऊँची। उसने सोचा—"अगर मेरी पत्नी की नाक ऊँची होती तो यह सुन्दर लगती।"

अतः गुरु के सो जाने पर उसने उनकी नाक काट ली तथा सोई हुई पत्नी की नाक काटकर गुरु की ऊँची नाक को उसपर जोड़ने लगा! पर वह जुट न पायी। इस तरह उसके द्वारा पत्नी और गुरु दोनों ही नक्कटा कर दिए गए।

५. मूर्खपशुपालककथा

पशुपालो महामुग्धः कोऽप्यासीद्धनवान् वने ।
तस्य धूर्ताः समाश्रित्य मित्रत्वे बहवोऽमिलन् ॥
ते तं जगदुराढ्यस्य सुता नगरवासिनः ।
त्वत्कृते याचितास्माभिः सा च पित्रा प्रतिश्रुता ॥
तच्छ्रुत्वा स ददौ तुष्टस्तेभ्योऽर्थं तं च ते पुनः ।
विवाहस्तव संपन्न इत्यूचुर्दिवसैर्गतैः ॥
ततः स सुतरां तुष्टस्तेभ्यो भूरि धनं ददौ ।
दिनैश्च तं वदन्तिस्म पुत्रो जातस्तवेति ते ॥
ननन्द तेन सर्वं च मूढस्तेभ्यः समर्प्य सः ।
पुत्रं प्रत्युत्सुकोऽस्मीति प्रारोदीच्चापरेऽहनि ॥
रुदंश्चादत्त लोकस्य हासं धूर्तैः स वञ्चितः ।
पशुभ्य इव संक्रान्तजडिमा पशुपालकः ॥

६. मूर्खपतिकथा

ग्राम्यः कश्चित्खनन् भूमिं प्रापालंकरणं महत् ।
रात्रौ राजकुलाच्चौरैर्नीत्वा तत्र निवेशितम् ॥
यद् गृहीत्वा स तत्रैव भार्यां तेन व्यभूषयत् ।
बबन्ध मेखलां मूर्ध्नि हारं च जघनस्थले ॥
नूपुरौ करयोस्तस्याः कर्णयोरपि कङ्कणौ ।
हसद्भिः स्थापितं लोकैर्बुद्ध्वा राजा जहार तत् ॥
तस्मात्स्वाभरणं तं तु पशुप्रायं मुमोच सः ॥

५. मूर्ख ग्वाले की कथा

महामूर्ख पर धनवान् कोई पशुपालक (ग्वाला) वन में रहता था। एक दिन उसके पास बहुत से ठग मित्र की तरह आये। उन्होंने उससे बताया कि—"हम नगर के एक धनी एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति की पुत्री को तुम्हारे लिए माँगे हैं और उसके पिता ने इस बात को स्वीकार कर लिया है।'

यह सुनकर खुश होकर ग्वाले ने उन्हें धन दे विदा किया। कुछ दिन बाद वे फिर आये और उन लोगों ने सूचित किया कि—'तुम्हारा विवाह उस लड़की से हो गया।" यह सुनकर उस ग्वाले ने उन धूर्तो को अत्यधिक खुश हो धन दिया।

कुछ दिन बीतने पर पुनः सभी धूर्त आये और उन्होंने उससे सुनाया—'तुमको पुत्र पैदा हुआ है।" पुनः उस ग्वाले ने अत्यधिक खुश हो उन्हें सभी धन दे दिया। दुसरे दिन मैं पुत्र देखने को उत्सुक हूँ" यह कहता हुआ रोने लगा। इस तरह विलाप करता हुआ वह लोगों की हँसी का पात्र बना। लोगों ने यहीं माना कि वह धूर्तों से ठगा गया है और उसके आश्रित सारे पशुओं की जडता उसी में आ गई है।

६. मूर्ख पति की कथा

कोई गँवार था। वह भूमि को खोदता हुआ बहुत आभूषणों को पाया। वे गहने रात्रि में राजदरबार से चोरों के द्वारा चुराकर लाये गये थे और वहाँ गाड़े गए थे। उन गहनों को लेकर उनसे उसने अपनी पत्नी को विभूषित किया।

उसने अपनी पत्नी के सिर को करधनी (मेखला) से, कमर को हार से, दोनों हाथों को नूपुरों से तथा दोनों कानों को कङ्कणों से सुशोभित किया। यह बात हँसते हुए लोगों के द्वारा राजा तक पहुँचायी गयी। यह जानकर राजा ने उसे बुलाकर उससे अपने आभूषणों को ले लिया और उसे पशु की तरह विना दण्ड दिये छोड़ दिया।

७. मूर्खवणिक्कथा

मूर्खः कश्चित्पुमांस्तूलविक्रयायापणं ययौ ।
अशुद्धमिति तत्तस्य न जग्राहात्र कश्चन ।
तावद् ददर्श तत्राग्नौ हेम निष्टप्तशोधितम् ।।
स्वर्णकारेण विक्रीतं गृहीतं ग्राहकेण च ।
तद् दृष्ट्वापि स तत्तूलमिच्छञ्शोधयितुं जडः ।।
अग्नौ चिक्षेप दग्धे च तस्मिल्लोको जहास तम् ।

८. मूर्खजनकथा

केचिन्मूर्खाः समाहूय न्ययोज्यन्ताधिकारिभिः ।
ग्राम्या राजकुलादिष्टं खर्जूरानयनं प्रति ।।
ते दृष्ट्वैकां मुखग्राह्यां खर्जूरपतितां स्वतः ।
खर्जूरीं तत्र खर्जूरीः सर्वा ग्रामे स्वकेऽच्छिनन् ।।[1]
पतितास्ताश्च कलिताशेषखर्जूरसंचयाः ।
उत्थाप्यारोपयामासुर्न चैषां सिद्ध्यतिस्म तत् ।।
ततश्चानीतखर्जूरा आदृतारोपणेन ते ।
खर्जूरीछेदनं बुद्ध्वा राज्ञा प्रत्युत दण्डिताः ।।

---

१. इस श्लोक का भाव स्पष्ट नहीं है।

७. मूर्ख बनिये की कथा

कोई मूर्ख बनिया रूई बेचने के लिए बाजार गया। रूइ गन्दी है'' यह कहकर किसी भी व्यक्ति ने उसे नहीं लिया। तबतक उसकी दृष्टि एक सुनार की दूकान पर पड़ी। वहाँ आग में तपाकर शुद्ध किया हुआ सोना रखा था। सुनार ने एक ग्राहक के हाथ उस सोने को बेंचा और ग्राहक ने उसे ग्रहण किया। यह देखकर उस मूर्ख ने अपनी रूई को शुद्ध करने के लिए आग में डाल दिया। रूई के जल जाने पर देखने बाले उसका उपहास करने लगे।

८. मूर्ख लोगों की कथा

राज्य के अधिकारियों ने गाँव के कुछ मूर्खो को बुलाकर उनको खजूर लाने के लिए राजदरबार का आदेश सुनाया। उन लोगों ने एक खजूर के वृक्ष, जो खाने योग्य पके खजूर के भार से गिरा था, को देखा। अतः वहाँ उनके गाँव में जितने भी खजूर के वृक्ष थे, सबों को उनलोगों ने काट डाला। वृक्षों के गिर जाने पर उन्हों ने खजूरों इकट्ठा किया। पुनः वे उन वृक्षों को उठाकर खड़ा करने लगे, पर उनका वह काम सफल नहीं हुआ। अब वे असफल हो खजूर को लेकर आ गए। खजूर के आरोपण के द्वारा वृक्षों का काटना जान राजा ने उन्हें पुरस्कार न दे दण्ड दिया।

९. मूर्खमन्त्रिकथा

निधानदर्शी केनापि कोऽप्याजह्रे महीभुजा ।
मा गात् क्वापि पलाय्यायमिति राजकुमन्त्रिणा ।।
नेत्रे तस्योदपाट्येतां निधानस्थानदर्शिनः ।
भूलक्षणान्यपश्यन्तं गतावप्यगतौ समम् ।
अन्धं दृष्ट्वा च तं मन्त्री स जडो जहसे जनैः ।।

१०. लवणाशिमूर्खकथा

वन्यः कोऽपि सुहृच्चासीत् कस्यापि पुरवासिनः ।
स जातु तेन सौहार्दादानीतः स्वगृहान्प्रति ।।
भोजितोऽथ कथमिदं स्वाद्विति तमसौ पुनः ।
लवणेनेति श्रुत्वासौ रहो लवणमुष्टिकाम् ।।
भुक्त्वौष्ठजिह्वानिर्दग्धो हा हेति विलपन् मुहुः ।
हासपात्रं परं जातो हासायैवाज्ञचेष्टितम् ।।

११. गोदोहिमूर्खकथा

कस्यचिन्मुग्धबुद्धेर्गौरेका क्षीरशतं पलान् ।
प्रत्यहं प्रददौ जातूत्सवकृद्विचचार सः ।।
अवश्यं पयसो मेऽत्र बहुना भाव्यमञ्जसा ।
न दोह्मि मासं युगपत्तदा प्राप्स्यमिति स्थितः ।।
उत्सवे त्वागतेऽसौ तां दोग्धुं यावदुपक्रमेत् ।
तावच्चासंस्तवात्तस्यास्तदल्पं समजायत ।।
क्रुद्धो यावद् बलात्तस्याः दुग्धं लब्धुं प्रचक्रमे ।
तावद्रक्तं तया दत्तमालोक्य किमिदं जनैः ।
पृष्टो वृत्तं तदाख्याय हासपात्रं बभूव सः ।।

टिप्पणी—ऊपर की दोनों कथायें "कथासरित्सागर" में भी है, पर अधिक स्पष्ट न होने से "नीतिकल्पतरु" से यहाँ उद्धृत हैं ।

९. मूर्ख मंत्री की कथा

खजाने को देखने के लिए किसी व्यक्ति को राजा ने बुलाया। राजा के दुष्ट (मूर्ख) मन्त्री ने "यह भागकर कहीं चला न जाय" यह सोचकर खजाने की जगह देखने के लिये आये हुए व्यक्ति की दोनों आँखें निकलवा लीं। भूमि के लक्षणों कों नहीं देखने वाले तथा गति और अगति में समान उस अन्धे को देखकर वह मूर्ख मंत्री हँसा परन्तु लोगों के द्वारा वह स्वयं हास्य का पात्र बना।

१०. नमक खाने वाले मूर्ख की कथा

किसी नगरवासी का कोई वनवासी मित्र था। किसी समय उसने उस वनवासी को प्रेमपूर्वक अपने घर बुलाया और उसे भोजन कराया। इसके बाद उस वनवासी ने उससे पूछा कि "ये भोज्य-पदार्थ कैसे सुस्वादु बने हैं ? "नमक से" उसके मित्र ने कहा।

यह सुनकर उसने एकान्त में एक मुट्ठी नमक खा लिया। नमक खाने से उसकी होठें एवं जीभ जल गयी। अतः वह बार-बार रोता हुआ लोगों की हँसी का पात्र बना। इस प्रकार मूर्खों की क्रियाएँ हास्यास्पद ही होती हैं।

११. गाय दूहने वाले मूर्ख की कथा

किसी मूर्खबुद्धि व्यक्ति की एक गाय प्रतिदिन सौ पल दूध देती थी। किसी समय उसने विचार किया कि मेरे होने वाले उत्सव में एक साथ बहुत दूध की आवश्यकता पड़ेगी। अतः मैं एक माह तक दूध नहीं दुहूँगा।

उत्सव आने पर जब उसने उस गाय को दुहना शुरू किया, तब दूध दुहने का सम्पर्क छूट जाने से थोड़ा दूध निकला। क्रुद्ध हो जब उसने बलपूर्वक दूध दुहना शुरू किया तब उस गाय ने खून दे दिया। यह देख लोगों ने उससे पूछा और घटना को सुनाकर वह मूर्ख लोगों की हँसी का पात्र बना।

१२. मूर्खयात्रिखल्वाटयोः कथा

खलतिस्ताम्रकुम्भाभशिराः कश्चित् पुमानभूत् ।।

वृक्षमूलोपविष्टं तं तरुणः कश्चिदैक्षत ।
आगतोऽत्र कपित्थानि गृहीत्वा क्षुधितः पथा ।।

स कपित्थेन तत्तस्य क्रीडयाताडयच्छिरः ।
खलतिः सोऽपि तत्सेहे न तस्योवाच किंचन ।।

ततोऽन्यैः क्रमशः सर्वैः स कपित्थैरताड्यत ।
शिरस्तस्य स चातिष्ठत्तूष्णीं रक्ते स्रवत्यपि ।।

स च निष्फलतारुण्य-कृतक्रीडाविचूर्णितैः ।
विना कपित्थैः क्षुत्क्लान्तो ययौ मूर्खयुवा ततः ।।

कपित्थैः स्वादुभिः किं न सहे घातानिति ब्रुवन् ।
स खल्वाटो गलद्रक्तशिरा मूर्खो ययौ गृहम् ।

मूर्खसाम्राज्यबद्धेन पट्टेनेव वृतं शिरः ।
रक्तेन तस्य तद् दृष्ट्वा हसतिस्म न तत्र कः ।।

१२. मूर्ख यात्री एवं गंजे की कथा

कोई ताम्बे के घड़े के समान सिरवाला गंजा आदमी था। वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए उस आदमी को किसी तरुण ने देखा। यात्रा से थका-माँदा और भूखा वह तरुण कपित्थ (कईत) फलों को लेकर वहाँ आया और उसने हँसी खेल में एक कपित्थ (कईत) से उस खल्वाट के सिर पर मारा। उस खल्वाट (गंजा) ने भी उस चोट को सह लिया और उससे कुछ भी नहीं कहा। तब उस तरुण ने अन्य सभी कपित्थों से उसके सिर पर मारा। परन्तु वह गंजा चुपचाप बैठा रहा।

तब वह मूर्ख तरुण जवानी के इस बेकार हँसी मजाक के कारण टूटे फूटे और विखरे हुए कपित्थों के बिना ही भूखा-प्यासा चला गया। यद्यपि उस मूर्ख गंजे के सिर से खून बह रहा था फिर भी "मीठे कपित्थों के घावों को क्यों न सह लिया जाम' ऐसा कहता हुआ घर चला गया।

खून से लथपथ, लाल पट्ट (मुकुट) से बँधे हुए की तरह इस मूर्ख-सम्राट् के सिर को देखकर कौन ऐसा था जो नहीं हँस रहा था।

१३. मूर्खखल्वाटकथा

ताम्रकुम्भोपमशिराः कोऽप्यासीत्खल्वतिः पुमान् ।
स च मूर्खोऽर्थवांल्लोके लज्जतेस्म कचैर्विना ॥
अथ धूर्तस्तमागत्य कोऽप्युवाचोपजीविकः ।
एकोऽस्ति वैद्यो यो वेत्ति केशोत्पाददमौषधम् ॥
एतच्छ्रुत्वा तमाह स्म तमानयसि चेन्मम ।
ततोऽहं तव दास्यामि धनं वैद्यस्य तस्य च ॥
एवमुक्तवतस्तस्य धनं भुक्त्वाचिरेण सः ।
मुग्धस्यानीतवानेकं धूर्तो धूर्तचिकित्सकम् ॥
उपजीव्य चिरं सोऽपि खल्वाटं तं भिषग्वरः ।
अपास्य वेष्टनं युक्त्या मुग्धायास्मायदर्शयत् ॥
तद्दृष्ट्वाप्यविमर्शः सन् वैद्यं केशार्थमौषधम् ।
तं ययाचे स जडधीस्ततो वैद्योऽब्रवीत्स तम् ॥
खल्वाटः स्वयमन्यस्य जनयेयं कथं कचान् ।
इति ते मूर्ख निर्लोम दर्शितं स्वशिरो मया ॥
तथापि त्वं न वेत्स्येव धिगित्युक्त्वा ययौ भिषक् ॥

१४. मूर्खभृत्यकथा

मुग्धोऽभूत्पुरुषः कश्चिद्भृत्यः श्रिष्टस्य कस्यचित् ॥
स तेन स्वामिना तैलमानेतुं वणिजोऽन्तिकम् ।
प्रेषितो जातु तत्तस्मात् पात्रे तैलमुपाददे ॥
तैलपात्रं गृहीत्वा तद् आगच्छंस्तत्र केनचित् ।
ऊचे मित्रेण रक्षेदं तैलपात्रं स्रवत्यधः ॥
तच्छ्रुत्वा वीक्षितुमधः पात्रं तत्पर्यवर्तयत् ।
स मूढस्तेन तत्सर्वं तैलं तस्यापतद् भुवि ॥
तद्बुद्ध्वा लोकहास्योऽसौ निरस्तः स्वामिना गृहात् ।

१३. मूर्ख गंजे की कथा

ताम्बे के घड़े के समान सिर वाला कोई गंजा आदमी था। वह मूर्ख था, पर धनी था। बालों के न होने से वह लोगों के बीच में जाने से लजाता था। एक दिन कोई एक धूर्त उसके पास आया और सत्कार पाकर उससे बोला "एक वैद्य है जो केश जमाने की दवा बताता है" यह सुनकर उस खल्वाट ने कहा—"यदि तुम उसे मेरे पास ला दो तो मैं तुम्हें एवं उस वैद्य को भी काफी धन दूँगा।"

इस तरह उसके कहने पर बहुत दिनों तक उस धूर्त ने उसके धन का उपभोग किया। तदनन्तर एक धूर्त वैद्य को उस केश के लोभी के पास लाया। उस वैद्य ने भी बहुत दिन तक उसके धन का उपभोग किया। तदनन्तर एक दिन उस वैद्य ने अपने सिर के वेष्टन (पगड़ी) को हटाकर उस लोभी खल्वाट को अपना सिर दिखा दिया। उस गंजे सिर को देखकर भी मूर्खबुद्धि गंजे ने वैद्य से केशों के लिए दवा माँगी।

तब उस वैद्य ने उससे कहा—"जो स्वयं गंजा हो, वह दूसरे गंजे के बालों को कैसे जमा सकता है? इसीलिए हे मूर्ख! मैंने अपने गंजे सिर को तुझे दिखा दिया। फिर भी तुम नहीं समझ पा रहे हो! अतः तुम्हें धिक्कार है। ऐसा कहकर वह वैद्य चला गया।

१४. मूर्ख नौकर की कथा

कोई मूर्ख किसी भद्र पुरुष का नौकर था। एक बार उसके मालिक ने तेल लाने के लिए उसे बनिये के पास भेजा। वहाँ जाकर उसने उसके एक पात्र में तेल लिया। तेल के पात्र को लेकर जब वह रास्ते में आ रहा था, किसी मित्र ने उससे कहा—"इस तेल की रक्षा करो, तेल का पात्र चू रहा है।"

यह सुनकर उसने छिद्र देखने के लिए उस पात्र को उलट दिया। पात्र के उलटने से सारा तेल नीचे जमीन पर गिर गया। यह जानकर लोगों ने उसकी हँसी उड़ायी और स्वामी ने उसे घर से निकाल दिया।

१५. मूर्खचाण्डालकन्याकथा

अभूद्रूपवती कापि मुग्धा चाण्डालकन्यका ।
सार्वभौमवरप्राप्तौ संकल्पं हृदि साकरोत् ॥

सा जातु दृष्ट्वा राजानं नगरभ्रमनिर्गतम् ।
सर्वोत्तमं भर्तृबुद्धेरनुयातुं प्रचक्रमे ॥

तावदागात्पथा तेन मुनिस्तस्य प्रणम्य सः ।
पादौ गजावरूढः सन् राजा स्वभवनं ययौ ॥

तद्दृष्ट्वा राजतोऽप्येनं विचिन्त्य मुनिमुत्तमम् ।
चाण्डालकन्या राजानं त्यक्त्वा सा मुनिमन्वगात् ॥

मुनिः सोऽपि व्रजन्दृष्ट्वा शून्यमग्रे शिवालयम् ।
न्यस्तजानुः क्षितौ तत्र शिवं नत्वा ययौ ततः ॥

तद्वीक्ष्य सान्त्यजा मत्वा मुनेरप्युत्तमं शिवम् ।
भर्तृबुद्ध्या मुनिं त्यक्त्वा देवं तत्रैव शिश्रिये ॥

क्षणाच्चात्र प्रविश्य श्वा देवस्यारुह्य पीठिकाम् ।
जङ्घामुत्क्षिप्य जातेर्यत्सदृशं तस्य तद्व्यधात् ॥

तद्विलोक्यान्त्यजा मत्वा देवात् श्वानं तमुत्तमम् ।
यान्तं तमेवान्वगात्सा त्यक्त्वा देवं पतीच्छया ॥

श्वा चागत्यैव चाण्डालगृहं परिचितस्य सः ।
चाण्डालयूनः प्रणयाल्लुलोठैकस्य पादयोः ॥

तदालोक्योत्तमं मत्वा शुनश्चाण्डालपुत्रकम् ।
स्वजातितुष्टा वव्रे सा तमेव पतिमन्त्यजा ॥
एवं कृतपदा दूरे पतन्ति स्वपदे जडाः ॥

१५. मूर्ख चण्डालकन्या की कथा

कोई चण्डाल-कन्या अत्यन्त रूपवती एवं भोली-भाली थी। उसने सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न वर (पति) पाने का संकल्प अपने मन में किया। किसी समय उसने नगर घूमने के लिए निकले हुए एक राजा को देखा और मन में सोचा "यह राजा ही सर्वोत्तम है।" अतः पति के रूप में पाने की इच्छा से उसके पीछे-पीछे वह चली।

तब तक उसने रास्ते में देखा कि उस राजा ने एक मुनि के चरणों में प्रणाम किया। प्रणाम कर राजा हाथी पर चढ़ा और अपने घर चला गया। यह देख "राजा से भी उत्तम यह मुनि है" ऐसा विचार कर वह राजा को छोड़ मुनि के पीछे चल दी।

जाते हुए उस मुनि ने भी आगे एक खाली शिवालय को देखा और भूमि पर घुटने टेक शिव को प्रणाम कर चला गया। यह देख उस चण्डाल-कन्या ने मुनि से भी उत्तम शिव को माना। पति-बुद्धि से मुनि को छोड़ वह भगवान् शिव की ही सेवा करने लगी। कुछ क्षण में ही वहाँ एक कुत्ता प्रवेश कर शिव की पीठिका पर चढ़कर एक जङ्घा उठाकर अपनी जाति के अनुरूप कार्य कर दिया। यह कार्य देख वह चण्डाल-कन्या यह सोचकर कि "इस देव से अच्छा तो कुत्ता है" उस जाते हुए कुत्ते के पीछे पति-वरण की इच्छा से लग गयी। वह कुत्ता एक परिचित चण्डाल के घर आकर एक चण्डाल-युवक के पैरों पर लोट-पोट होने लगा। यह देख कर उस चण्डाल - कन्या ने कुत्ते से श्रेष्ठ उस चण्डाल - पुत्र को माना और अपनी जाति में खुश होती हुई उसे अपना पति स्वीकार कर लिया। इस तरह ऊँची-ऊँची आशाएँ रखने वाले मूर्ख आखिर अपने ही स्थान में आकर ठिकाना पाते हैं।

१६. मूर्खराजकथा

मूर्खः कश्चिदभूद्राजा कृपणः कोषवानपि ।
एकदा जगदुश्चैवं मन्त्रिणस्तं हितैषिणः ॥
दानं हरति देवेह दुर्गतिं पारलौकिकीम् ।
तद्देहि दानमायूंषि भङ्गुराणि धनानि च ॥
तच्छ्रुत्वा स नृपोऽवादीद् दानं दास्याम्यहं तदा ।
दुर्गतिं प्राप्तमात्मानं मृतो द्रक्ष्यामि चेदिति ॥
ततश्चान्तर्हसन्तस्ते तूष्णीमासत मन्त्रिणः ।
एवं नोज्झति मूढोऽर्थान् यावदर्थैः स नोज्झितः ॥

१७. मूर्खपिपासितकथा

कश्चिन्मुग्धोऽध्वगस्तीर्त्वा कृच्छ्रात्तृष्णातुरोऽटवीम् ।
नदीं प्राप्यापि न पपौ वीक्षांचक्रे परं जलम् ॥
तृषितोऽपि पिबस्यम्भः किं नेत्युक्तोऽत्र केनचित् ।
इयत्कथं पिबामीति मन्दबुद्धिरुवाच तम् ॥
किं दण्डयति राजा त्वां सर्वं पीतं न चेत्त्वया ।
इति तेनोपहसितोऽप्यम्बु मुग्धः स नापिबत् ॥
एवं न शक्नुवन्तीह यद्यत्कर्तुमशेषतः ।
यथाशक्ति न तस्यांशमपि कुर्वन्त्यबुद्धयः ॥

१८. मूर्खपितृकथा

बहुपुत्रो दरिद्रश्च मूर्खः कश्चिदभूत्पुमान् ॥
स एकस्मिन् मृते पुत्रे द्वितीयमवधीत्स्वयम् ।
कथं बालोऽयमेकाकी पथि दूरे व्रजेदिति ॥
ततः स निन्द्यो हास्यश्च देशान्निर्वासितो जनैः ।
एवं पशुश्च मूर्खश्च निर्विवेकमती समौ ॥

१६. मूर्ख राजा की कथा

कोई मूर्ख राजा था और उसका खजाञ्ची कृपण था। एक बार हितैषी मन्त्रियों ने उस राजा से कहा—हे देव ! दान देने से परलोक की सम्भावित दुर्गतियाँ नष्ट होती हैं। अतः आप दान करें, क्यों कि आयु और धन क्षणभङ्गुर हैं।''

यह सुनकर उस राजा ने कहा ''यदि मरने के बाद मेरी दुर्गति होगी तो दान करुँगा।'' यह सुन सभी मन्त्री भीतर ही भीतर हँसते हुए चुप रहे। इस तरह मूर्ख अपने धन को तबतक नहीं छोड़ता जब तक कि धन उसे स्वयं नहीं छोड़ देता।

१७. मूर्ख प्यासे की कथा

कोई मूर्ख पथिक बड़े कष्ट से जंगल को पारकर नदी पर प्यास से व्याकुल हो आया। परन्तु वह नदी के अधिक जल को देखता रहा, पीआ नही। अतः किसी ने उससे पूछा—''प्यासे होकर भी तुम जल क्यों नहीं पीते ?'' उस मूर्ख ने उत्तर दिया ''इतना कैसे पीऊँ ?''

पुनः उस व्यक्ति ने कहा—''क्या तुझे कोई राजा दण्ड देगा यदि तुम सभी नहीं पीते ? (अर्थात् अपनी प्यास के अनुरूप पी लो)। ऐसा उपहास होने पर भी उस मूर्ख ने जल नहीं पीआ।

इस तरह मूर्ख बुद्धि लोग यदि किसी काम को पूर्णरूप से नहीं कर सकते तो यथाशक्ति उसके किसी भाग को भी नहीं करते।

१८. मूर्ख पिता की कथा

एक दरिद्र व्यक्ति था, जिसके बहुत पुत्र थे। उसने अपने एक पुत्र के मर जाने पर दूसरे को स्वयं मार डाला। इसलिए कि यह बालक अकेले कहीं दूर रास्ते में कैसे जाएगा ?

इसके बाद उसकी बड़ी निन्दा एवं हँसी हुई और लोगों ने उसे देश से निकाल दिया। इस तरह के पशु और मूर्ख विवेकहीन बुद्धि होने के कारण समान ही होते हैं।

१९. मूर्खभ्रातृकथा

जनमध्ये कथाः कुर्वन्कोऽप्यासीत्क्वापि मुग्धधीः ।।
स भव्यं पुरुषं दूराद्दृष्ट्वा मूर्खोऽब्रवीदिदम् ।
एष मे भवति भ्राता रिक्थमस्य हराम्यतः ।।
अहं तु कश्चिन्नैतस्य तेन नैतद्वणं मम ।
इत्युक्तवान् स मूढोऽत्र पाषाणानप्यहासयत् ।।

२०. मूर्खपुत्रकथा

कश्चित् पितृगुणाख्यान - प्रवृत्तसखि-मध्यगः ।
मुग्धः स्वपितुरुत्कर्षं वर्णयन्नेवमभ्यधात् ।।
आबाल्याद् ब्रह्मचारी मे पिता नान्योऽस्ति तत्समः ।
तच्छ्रुत्वा त्वं कुतो जात इति तं सुहृदोऽब्रुवन् ।।
मानसोऽहं सुतस्तस्येत्येवं पुनरपि ब्रुवन् ।
विशेषतो विहसितः स तैर्जडशिरोमणिः ।
अत्यारूढं वदन्त्येवमसंबद्धं जडाशयाः ।

१९. मूर्ख भाई की कथा

कहीं कोई एक मन्दमति व्यक्ति था जो लोगों के बीच कथाएँ कहा करता था। वह मूर्ख दूर से एक भव्य पुरुष को देखकर यह बोला—"यह मेरा भाई लगता है। अतः मैं इससे अपना दायभाग (पैतृक-हिस्सा) ले ले रहा हूँ। परन्तु मैं तो इसका कोई भी नहीं हूँ, अतः मुझे इसको कुछ भी नहीं देना है।" इस तरह कहता हुआ उस मूर्ख ने पाषाणों (पत्थरों) को भी हँसा दिया।

२०. मूर्ख पुत्र की कथा

कुछ मित्र थे, जो आपस में बैठकर अपने-अपने पिता के गुणों का बखान कर रहे थे। उन्हीं के वीच बैठा हुआ कोई मूर्ख अपने पिता के उत्कर्ष का वर्णन करता हुआ वोला—"बचपन से लेकर आज तक हमारे पिता ब्रह्मचारी हैं, उनके समान दूसरा कोई नहीं है।"

यह सुनकर उसके मित्र उससे बोले—"तो तुम कहाँ से पैदा हुए?" यह सुन उसने पुनः कहा—"मैं उनका मानस पुत्र हूँ।" इस तरह कहने पर वह मूर्ख-शिरोमणि विशेष रूप से उपहसित हुआ। जडबुद्धि इसी तरह की असम्वद्ध वातें किया करते हैं।

२१. मूर्खगणककथा

बभूव नाम गणकः कश्चिद्विज्ञानवर्जितः ।
स भार्यापुत्रसहितः स्वदेशाद्वृत्यभावतः ।।
गत्वा देशान्तरं चैवं मिथ्याविज्ञानमात्मनः ।
कृतकप्रत्ययेनार्थपूजां प्राप्तमदर्शयत्[1] ।।
परिष्वज्य सुतं बालं स तं सर्वजनाग्रतः ।
रुरोद पृष्टश्च जनैरेवं पापो जगाद सः ।।
भूतं भव्यं भविष्यच्च जानेऽहं तदयं शिशुः ।
विपत्स्यते मे दिवसे सप्तमे तेन रोदिमि ।।
इत्युक्त्वा तत्र विस्माप्य लोकं प्राप्तेऽह्नि सप्तमे ।
प्रत्यूष एव सुप्तं च स व्यापादितवान्सुतम् ।।
दृष्ट्वाथ तं मृतं बालं संजातप्रत्ययैर्जनैः ।
पूजितो धनमासाद्य स्वदेशं स्वैरमाययौ ।।
इत्यर्थलोभान्मिथ्यैव विज्ञानख्यापनेच्छवः ।
मूर्खाः पुत्रमपि घ्नन्ति न रज्येत्तेषु बुद्धिमान् ।।

---

१. श्लोक के उत्तरार्द्ध का भाव स्पष्ट नहीं है ।

२१. मूर्ख ज्योतिषी की कथा

कोई शास्त्रज्ञान से रहित नाम मात्र का गणक (ज्योतिषी) था। वह अपनी पत्नी और पुत्र के साथ अधिक धन कमाने की इच्छा से अपने देश में जीविका न चलने के कारण देशान्तर गया और अपने बनावटी विश्वास से पैसे आदि बनाने की कला को दिखाकर उससे अपने मिथ्याविज्ञान को उसने प्रचारित किया।

वह सभी लोगों के सामने अपने उस पुत्र का आलिङ्गन कर रोने लगा। लोगों के पूछने पर वह पापी बोला—"मैं भूत वर्तमान और भविष्य को जानता हूँ और यह मेरा पुत्र सातवें दिन मर जाएगा, इसी से रो रहा हूँ।" ऐसा कहकर उसने लोगों को विस्मित करने के लिए सातवें दिन के सबेरे ही अपने सोये :हुए :पुत्र को मार डाला।

उस बालक को मरा देख लोगों को विश्वास हो गया और लोगों ने धन से खूब उसकी पूजा की। वह यथेच्छ धन लेकर स्वदेश लौट आया। इस तरह से अर्थ के लोभ से मिथ्या ही विज्ञान प्रचार करने के इच्छुक मूर्ख पुत्र को भी मार डालते हैं पर बुद्धिमान् ऐसे लोगों के साथ सम्बन्ध नहीं रखते।

२२. मूर्खक्रोधिकथा

(अयं च श्रूयतां मूर्खः) क्रोधनः पुरुषः प्रभो ।
बहिः स्थितस्य कस्यापि पुंसः कुत्रापि शृण्वतः ॥
अभ्यन्तरे गुणान्कश्चिच्छशंस स्वजनाग्रतः ।
तदा चैकोऽब्रवीत्तत्र सत्यं स गुणवान् सखे ॥
किं तु द्वौ तस्य दोषौ स्तः साहसी क्रोधनश्च यत् ।
इति वादिनमेवैतं बहिर्वर्ती निशम्य सः ॥
पुमान् प्रविश्य सहसा वाससावेष्टयन् गले ।
रे जाल्म साहसं किं मे क्रोधः कश्च मया कृतः ॥
इत्युवाच च साक्षेपं पुमान् क्रोधाग्निना ज्वलन् ।
ततो हसन्तस्तत्रान्ये तमूचुः किं ब्रवीत्यदः ॥
प्रत्यक्षदर्शित - क्रोधसाहसोऽपि भवानिति ।
एवं स्वदोषः प्रकटोऽप्यज्ञैर्दैव न बुध्यते ।

२२. मूर्ख क्रोधी की कथा

हे प्रभो ! इस मूर्ख के बारे में सुनें। यह क्रोधी पुरुष है" इस तरह किसी बाहर खडे पुरुष से सुनते ही उसके बारे में भीतर उसके गुणों का बखान कोई अपने आदमी से कर रहा था। उसी समय भीतर कोई बोला—"हे मित्र ! यह सत्य है कि वह गुणवान् है, लेकिन दो उसके दोष हैं कि वह साहसी है और क्रोधी भी।"

इस तरह उसके बोलने पर बाहर से उसकी बात को सुनकर उस व्यक्ति ने प्रवेश कर अकस्मात् उस व्यक्ति के गले में कपड़ा फाँस कर कहा—"रे मूर्ख ! मैंने क्या साहस और क्रोध किया।"

इस तरह क्रोधाग्नि से जलते हुए उसने गरज कर कहा। तब हँसते हुए अन्य लोगों ने उससे कहा—"यह क्या कहेगा ? आप ने तो प्रत्यक्ष ही क्रोध और साहस दिखा दिया। इस तरह अज्ञानी अपने दोष को प्रकट कर देते हैं पर स्वयं नहीं समझ पाते हैं।

२३. मूर्खपितृकथा

(इदानीं श्रूयतां) मुग्धः कन्यावर्धयिता नृपः ।
राजाभूत्कोऽपि कन्यैका सुरूपाजनि तस्य च ॥
स वर्धयितुकामस्तामतिस्नेहेन सत्वरम् ।
वैद्यानानीय नृपतिः प्रीतिपूर्वमभाषत ॥
सदौषधप्रयोगं तं कंचित् कुरुत येन मे ।
सुतैषा वर्धते शीघ्रं सत्पात्रे च प्रदीयते ॥
तच्छ्रुत्वा तेऽब्रुवन्वैद्या उपजीवयितुं जडम् ।
अस्त्यौषधमितो दूरात्तु देशादवाप्यते ॥
आनयामश्च यावत्तावदेव सुता तव ।
अदृश्या स्थापनीयैषा विधानं तत्र हीदृशम् ॥
इत्युक्त्वा स्थापयामासुश्छन्नां ते तां नृपात्मजाम् ।
संवत्सरानत्र बहून् औषधप्राप्तिशंसिनः ॥
यौवनस्थां च तां प्राप्तामौषधेन प्रवर्धिताम् ।
ब्रुवाणा दर्शयामासुः सुतां तस्मै महीभृते ॥
सोऽपि तान्पूरयामास वैद्यांस्तुष्टो धनोच्चयैः ।
इति व्याजाज्जडधियो धूर्तैर्मुष्यन्त ईश्वराः ॥

२३. मूर्ख पिता की कथा

(इस समय सुनें ।) कोई एक मूर्ख राजा था, जिसे एक सुन्दर वालिका पैदा हुई थी। वह राजा जल्द से जल्द उसे बढ़ाना चाहता था। अतः उसे स्नेह से शीघ्र ही युवती बनानें के लिए वैद्यों को बुलाकर राजा विनयपूर्वक बोला—"किसी अच्छी औषधि का प्रयोग कीजिये जिससे मेरी पुत्री बढ़कर शीघ्र पति को देने योग्य हो जाय।"

यह सुनकर वे वैद्य उस मूर्ख को ठगने के लिए बोले—"यहाँ से दूर देश में औषधि है। जब तक हम उस औषधि को लाते हैं तब तक आपकी पुत्री को छिपाकर रखना होगा, ऐसा ही दवा का विधान है।" इस प्रकार कहकर उन्होंने राजकुमारी को छिपाकर रख दिया।

बहुत वर्षों के बीत जाने पर जब वह राजकुमारी युवती हो गई तो अपनी औषधि की प्रशंसा करते हुए उन वैद्यों ने उस राजा को उसकी पुत्री को दिखाया। उस मूर्ख राजा ने भी उन वैद्यों को अधिकाधिक धन देकर सन्तुष्ट किया। इसी तरह से छलपूर्वक धूर्तों के द्वारा धनी मूर्खों के धन का भोग किया जाता हैं।

२४. मूर्खकृपणकथा

(अयं चाकर्ण्यताम्) अर्धपणोपार्जनपण्डितः ।
अभून्नगरवास्येकः पुमान् प्रज्ञाभिमानवान् ।।
ग्रामवासी च तस्यैकः पुमान् संवत्सरावधि ।
भृतको वृत्त्यसंतोषादापृच्छ्य स्वगृहं ययौ ।।
गते तस्मिंश्च पप्रच्छ भार्यां तन्वि गतः स ना ।
त्वत्तः किंचिद् गृहीत्वेति साप्यर्धपणमभ्यधात् ।।
ततो दशपणान् कृत्वा पाथेयं स नदीतटे ।
गत्वा स्वभृतकात् तस्मात्तमर्धपणमानयत् ।।
तच्चार्थकौशलं शंसन् स ययौ लोकहास्यताम् ।
एवं बहु क्षपयति स्वल्पस्यार्थे धनान्धधीः ।।

२५. मूर्खाभिज्ञानिकथा

कस्यचिद्यानपात्रेण मूर्खस्य व्रजतोऽम्बुधौ ।।
राजतं भाजनं हस्तादपतत् तज्जलान्तरे ।
स तत्र मूर्खोऽभिज्ञानमावर्तादिकमग्रहीत् ।।
आगच्छन्नुद्धरिष्यामि तदितोऽब्धिजलादिति ।
पारं प्राप्याम्बुधेस्तीर्णो दृष्ट्वावर्तादि वारिणि ।।
ममज्ज भाजनं प्राप्तुमभिज्ञानधिया मुहुः ।
पृष्टश्चोक्ताशयः सोऽन्यैरुपाहस्यत धिक्कृतः ।।

२४. मूर्ख कृपण की कथा

(इसे भी सुनें।) एक नगरवासी व्यक्ति था जो अभिमानी, बुद्धिमान् एवं आधे पैसे को भी उपार्जित करने में चतुर था। उसका एक देहाती नौकर पर्याप्त वेतन न मिलने के कारण एक वर्ष तक काम कर उससे विना पूछे ही घर चला गया। उसके चले जाने पर उसने अपनी पत्नी से पूछा—"हे कृशाङ्गि! वह व्यक्ति तुझसे कुछ लेकर घर गया?" उसकी पत्नी ने बताया कि आधे पैसे को लेकर गया है।

तब उसने दस पैसे रास्ते में खर्च कर नदी के किनारे जाकर अपने उस नौकर से आधे पैसे को वसूला। वह इस अर्थोपार्जन की कुशलता की प्रशंसा करता हुआ लोगों की हँसी का पात्र बना। इस तरह धन के मद से अन्धी बुद्धि वाले कम लाभ के लिए अधिक पैसे भी खर्च कर देते हैं।

२५. मूर्ख अभिज्ञानी की कथा

एक मूर्ख था। समुद्र में जहाज से जाते हुए उस मूर्ख के हाथ से चाँदी का पात्र गिरकर जल में प्रवेश कर गया। उस मूर्ख ने चलते हुए भँवर के जल को पहचान के रूप में ले लिया। यह सोचकर कि "उधर से जब लौटूँगा तो इसी जल की पहचान से अपने पात्र को पहचान कर निकालूँगा।"

पार जाकर वह समुद्र में तैरता हुआ भँवर को देखकर वर्तन प्राप्त करने के लिए जल में डूबा। पूछने पर उसने अपना आशय बताया। उसको जानकर लोगों ने उसकी हँसी उड़ायी और उसे धिक्कारा।

२६. मूर्खराजकथा

मुग्धः कोऽपि नृपोऽपश्यत्प्रासादाद् द्वावथो नरौ ॥
तयोरेकेन च हृतं मांसं दृष्ट्वा महानसे ।
पञ्च मांसपलान्यङ्गात्तस्य हर्तुर्व्यकर्तयत् ॥
उत्कृत्तमांसं क्रन्दन्तं दृष्ट्वा तं पतितं भुवि ।
जातानुकम्पो राजासौ प्रतीहारं समादिशत् ॥
छिन्ने पञ्चपली मांसे नास्य शाम्यति सा व्यथा ।
तदतोऽप्यधिकं मांसममुष्मै दीयतामिति ॥
किं जीवति शिरश्छिन्नो दत्तैस्तत शिरः शतैः ।
दास्यामि देवेत्युक्त्वा स क्षत्ता गत्वाहसद्बहिः ॥
तं समाश्वास्य वैद्येभ्यः कृत्तमांसं समर्पयत् ।
एवं मूढप्रभुर्वेत्ति निग्रहं नाप्यनुग्रहम् ॥

२७. मूर्खमातृकथा

[इदं चाकर्ण्यतां] मन्दा स्त्री पुत्रान्तरकांक्षिणी ।
एकपुत्रां स्त्रियं कांचिदन्यपुत्राभिकांक्षया ॥
पृच्छन्तीमब्रवीत्काचित् पाखण्डा क्षुद्रतापसी ।
योऽयं पुत्रोऽस्ति ते बालस्तं हत्वा देवताबलिः ॥
क्रियते चेत्ततोऽन्यस्ते निश्चितं जायते सुतः ।
एवं तयोक्ता यावत्सा तत्तथाकर्तुमिच्छति ॥
तावद् बुद्ध्वा हितान्या स्त्री वृद्धा तामवदद्रहः ।
हंसि पापे सुतं जातमजातं प्राप्तुमिच्छसि ॥
यदि सोऽपि न जातस्ते ततस्त्वं किं करिष्यसि ।
इत्यवार्यत सा पापादार्यया वृद्धया तया ॥
एवं पतन्त्यकार्येषु शाकिनीसंगताः स्त्रियः ।
वृद्धोपदेशेन तु ता रक्ष्यन्ते कृतयन्त्रणाः ॥

२६. मूर्ख राजा की कथा

एक मूर्ख राजा ने महल से दो मनुष्यों को देखा। उनमें से एक को रसोईघर में मांस चुराते हुए पाया। अतः मांस चुराने वाले के अंग से मांस के पांच पल कटवा लिये गए। मांस निकाल लिए जाने से वह रोता हुआ जमीन पर गिर गया।

इस दशा में उसको देख राजा को दया आ गई और राजा ने द्वारपाल को आदेश दिया "पाँच पल मांस के काटे जाने पर उसकी व्यथा शान्त नहीं होती है, इसलिए इसे काटे गए मांस से भी अधिक मांस दे दिया जाय।"

अगर किसी का सिर काट लिया जाय और बाद में उसे सैकड़ों सिर दिया जाय तो क्या कोई जी उठेगा अर्थात् नहीं। अतः द्वारपाल "हे देव ! दे दूँगा" ऐसा कहता हुआ बाहर जाकर हँसने लगा। उस कटे मांस वाले व्यक्ति को आश्वासन दे वैद्य के पास ले गया। इस तरह से मूर्ख स्वामी न दण्ड देना जानता है और कृपा न करना।

२७. मूर्ख माता की कथा

(और यह भी सुनें) एक दूसरे पुत्र को चाहने वाली मूर्ख स्त्री थी। उस एक पुत्रवती से, जो अन्य पुत्र की आकांक्षा से पूछ रही थी, किसी क्षुद्र :पाखण्डिनी तापसी ने कहा–"जो यह तुम्हारा पुत्र बालक है, अगर उसे मारकर देवता को भेंट करो तो निश्चित ही तुम्हें दूसरा पुत्र पैदा होगा।"

उसके इस तरह कहने पर जब वह वैसा करने को सोचने लगी, तब यह जानकर हितैषिणी अन्य वृद्धा स्त्री उससे एकान्त में बोली— "अरी दुर्बुद्धे ! उत्पन्न हुए पुत्र को मार रही हो और अनुत्पन्न को प्राप्त करने की इच्छा कर रही हो। यदि वह भी नहीं पैदा हुआ तब तुम क्या करोगी ?"

इस प्रकार वह उस पाप से उस बूढ़ी भद्रस्त्री के द्वारा बचा ली गई। इस तरह शाकिनियों (चाण्डालिनियों) की संगति में पड़ी हुई स्त्रियाँ अकार्य भी कर बैठती हैं। परन्तु बड़े-बूढों के उपदेश से प्रयासपूर्वक बचा ली जाती हैं।

२८. मूर्खभृत्यकथा

(अयमामलकानेता देवेदानीं निशम्यताम् ।)
कस्याप्यभूद् गृहस्थस्य भृत्यः कश्चन मुग्धधीः ।।
समादिशद् गृहस्थस्तं भृत्यमामलकप्रियः ।
गच्छारामात् सुमधुराण्यानयामलकानि मे ।।
एकैकं दशनच्छेदेनास्वाद्यानीतवान् जडः ।
आस्वाद्य मधुराण्येतान्यानीतानीत्यवां प्रभुः ।।
सोऽब्रवीत्सोऽपि तान्यर्धोच्छिष्टान्यालोक्य कुत्सया ।
जहौ गृहपतिस्तेन भृत्येनाबुद्धिना समम् ।।
निष्प्रज्ञो नाशयत्येवं प्रभोरर्थमथात्मनः ।

२६. मूर्खाध्यवसायिकथा

कश्चित्पथि व्रजन्मूर्खः शकटस्थेन केनचित् ।
ऊचे समं कुरुष्वैतच्छकटं मे मनागिति ।।
समं करोमि चेत्तन्मे किं ददासीति वादिनम् ।
न किंचित्ते ददामीति शकटी निजगाद तम् ।।
ततः स मूर्खः शकटं समं कृत्वैव तस्य तत् ।
तन्मे न किंचिद् देहीति तं ययाचे स चाहसत् ।।

२८. मूर्ख नौकर की कथा

(हे देव ! इस समय आप सुनें।) किसी गृहस्थ का कोई मूर्खबुद्धि आँवला लाने वाला नौकर था। उस आँवले के प्रेमी गृहस्थ ने उसे आदेश दिया—"जाओ, मेरे बाग से सुमधुर आँवलों को लाओं।"

वह मूर्ख नौकर प्रत्येक आँवले को दाँत से काटकर और चखकर लाया। उसने कहा—"स्वामी ! देखें, हम इन्हें चखकर लाये है।" उन आधे जूठे आँवलों को देखकर उस गृहस्थ ने घृणा से उस मूर्ख नौकर के साथ ही आवलों को भी छोड़ दिया। इस प्रकार मूर्ख व्यक्ति स्वामी की और अपनी सम्पत्ति को भी नष्ट कर देता है।

२९. मूर्ख परिश्रमी की कथा

रास्ते में जाते हुए किसी मूर्ख से बैलगाड़ी में स्थित किसी व्यक्ति ने कहा—"अरे भाई ! थोड़ा मेरी इस गाड़ी को बराबर कर दो। तब मूर्ख ने कहा—यदि बराबर कर दूँ तो क्या दोगे ? तब गाड़ी पर बैठे हुए उस व्यक्ति ने कहा "कुछ नहीं दूँगा।"

तब उस मूर्ख ने उसकी गाड़ी को बराबर जगह पर कर दिया और "कुछ नहीं" यह माँगा। अब वह गाड़ीवान् "कुछ नहीं" देने को सोचता हुआ हँसने लगा।

३०. मूर्खभोक्तृकथा

क्रीणाति स्माध्वगः कश्चित् पणेनाष्टावपूपकान् ।
तेषां च यावत्षड् भुङ्क्ते तावन्मेने न तृप्तताम् ।
सप्तमेनाथ भुक्तेन तृप्तिस्तस्योदपद्यत ।।
ततश्चक्रन्द स जडो मुषितोऽस्मि न किं मया ।
एष एवादितो भुक्तोऽपूपो येनास्मि तर्पितः ।।
नाशिताः किं वृथैवान्ये मया हस्ते न किं कृताः ।
इति शोचन् क्रमात्तृप्तिमजानञ्जहसे जनैः ।।

३१. मूर्खदासकथा

कश्चिद्दासो हि वणिजा मूर्खः केनाप्यभण्यत ।
रक्षेस्त्वं विपणीद्वारं क्षणं गेहं विशाम्यहम् ।।
इत्युक्तवति यातेऽस्मिन् वणिजि द्वारपट्टकम् ।
विपणीतो गृहीत्वांसे दासो द्रष्टुमगान्नटम् ।।
आगच्छंश्च ततो दृष्ट्वा वणिजा तेन भर्त्सितः ।
त्वदुक्तं रक्षितं द्वारं मयेदमिति सोऽब्रवीत् ।।
इत्यनर्थाय शब्दैकपरोऽतात्पर्यविज्जडः ।

३०. मुर्ख भक्षक की कथा

कोई यात्री एक पैसे से आठ पूओं को खरीदा। उनमें से छः उसने खा लिये, फिर भी तृप्ति न हुई। सातवें को खाने से तृप्ति मिल गई। तब वह मूर्ख चिल्लाने लगा कि "मैं स्वयं अपने ही द्वारा लूट लिया गया। क्यों कि मैंने शुरू से सात पूए खाए जब कि तृप्ति केवल सातवें पूए से हुई। अतः मैंने अन्य छः पूओं को व्यर्थ ही खत्म कर डाला।"

इस तरह शोक करते हुए "क्रम से तृप्ति होती है" ऐसा नहीं समझने वाले उस मूर्ख का लोगों ने उपहास किया।

३१. मूर्ख नौकर की कथा

किसी मूर्ख दास को एक बनिये ने आदेश दिया "तुम दूकान के दरवाजे की रक्षा करो, तब तक मैं घर में जाता हूँ।" इस तरह उस बनिये के कहकर चले जाने पर दरवाजे के पल्ले को दूकान से निकालकर कंधे पर लादकर वह मूर्ख दास नट का खेल देखने चला गया।

उसे वहाँ देखकर बनिये ने उस दास को कोसा। तब उस दास ने उससे कहा—"मैंने आप के द्वार की रक्षा ही तो की।" इस तरह तात्पर्य नहीं जानने वाले उस मूर्ख दास ने अर्थ का अनर्थ कर डाला।

३२. मूर्खभिल्लकथा

कस्यचिन्महिषः कैश्चिद् ग्राम्यैर्ग्रामस्य वःह्यतः ।
नीत्वा वटतलं भिल्लवाटे व्यापाद्य भक्षितः ॥
तेन गत्वाथ विज्ञप्तो महिषस्वामिना नृपः ।
ग्राम्यानानाययामास स तान् महिषभक्षकान् ॥
तत्समक्षं स राजाग्रे महिषस्वाम्यभाषत ।
तडागनिकटे देव नीत्वा वटतरोरधः ॥
एभिर्मे महिषो हत्वा भक्षितः पश्यतो जडैः ।
तच्छ्रुत्वान्येषु तेष्वेको वृद्धमूर्खोऽब्रवीदिदम् ॥
तडाग एव नास्त्यस्मिन्ग्रामे न च वटः क्वचित् ।
मिथ्या वक्त्येष महिषः क्व हतो भक्षितोऽस्य वा ॥
श्रुत्वैतन्महिषस्वामी सोऽब्रवीन्नास्ति किं वटः ।
तडागश्च स पूर्वस्यां दिशि ग्रामस्य तस्य वः ॥
अष्टम्यां च स युष्माभिर्भक्षितो महिषोऽत्र मे ।
इत्युक्तस्तेन स पुनर्वृद्धमूर्खोऽब्रवीदिदम् ॥
पूर्वा दिगेव नास्त्यस्मद्ग्रामे नाप्यष्टमी तिथिः ।
एतच्छ्रुत्वा हसन्राजा तमाहोत्साहयञ्जडम् ॥
त्वं सत्यवादी नासत्यं किंचिद्वदसि तन्मम ।
सत्यं ब्रूहि स युष्माभिः किं भुक्तो महिषो न वा ॥
एतच्छ्रुत्वा जडोऽवादीन्मृते पितरि वत्सरैः ।
त्रिभिर्जातोऽस्मि तेनैव शिक्षितोऽस्म्युक्तिपाटवम् ॥
तदसत्यं महाराज न कदाचिद्वदाम्यहम् ।
भुक्तोऽस्य महिषोऽस्माभिरन्यद्वक्ति मृषा ह्यसौ ॥
श्रुत्वैतत्सानुगो राजा हासं रोद्धुं स नाशकत् ।
निर्यात्य महिषं तस्य तांश्च ग्राम्यानदण्डयत् ॥

३२. मूर्ख भील की कथा

कुछ ग्रामीणों ने गाँव के बाहर किसी के भैंसे को भीलों की बस्ती में वटवृक्ष के नीचे मारकर खा डाला। उस भैंसे के स्वामी ने जाकर शिकायत की। वह जाकर अपने भैंसे के खाने वाले उन ग्रामींणों को बुला लाया और राजा के सामने उसने कहा—"हे देव! तालाब के किनारे वटवृक्ष के नीचे मेरे भैंसे को लाकर मारकर इन लोगों ने मेरे देखते-देखते खा लिया।"

यह सुनकर उनमें से एक बूढ़े ने यह कहा—"हमारे इस गाँव में तालाब ही नहीं है और न कहीं वटवृक्ष है। यह झूठ बोलता है। इसका भैंसा न तो कहीं मारा गया, न खाया गया।"

ऐसा सुनकर उस भैंसे के स्वामी ने कहा—"तो क्या हमारे गाँव के पूर्व दिशा में वह वटवृक्ष नहीं है और तालाब नहीं है? तथा अष्टमी के दिन तुम लोगों ने वहाँ मेरे भैंसे को नहीं खाया? "इस तरह उसके कहने पर उस बूढ़े मूर्ख ने कहा—"हमारे गांव में तो पूर्व दिशा ही नहीं है और न तो अष्टमी तिथि ही है।

यह सुनकर हँसते हुए राजा ने उस मूर्ख का उत्साहवर्द्धन करते हुए कहा "तुम सत्यवादी हो। तुम कुछ भी झूठ नहीं बोल रहे हो। इसलिए मुझसे सत्य कहो कि तुम लोगों ने उस भैंसे को मारा और खाया कि नहीं?"

यह सुनकर वह मूर्ख बोला—"मै पिता के मरने के तीन वर्ष बाद पैदा हुआ और उन्हीं ने मुझे बोलने का कौशल सिखाया। इसलिए हे महाराज! मैं असत्य कुछ भी नहीं बोलता हूँ। केवल यह बात सत्य है कि इसके भैंसे को हमलोगों ने खाया है। पर दूसरी इसकी सारी बातें झूठी हैं।"

उसके कथन के पश्चात् राजा अपनी हँसी न रोक सके। स्वामी को भैंसे का मूल्य दिलाकर राजा ने उन ग्रामीणों को दण्ड दिया।

३३. मूर्खपतिकथा

कंचिद्दरिद्रं गृहिणी चण्डी मूर्खमभाषत ।
प्रातः पितृगृहं यास्याम्युत्सवेऽस्मि निमन्त्रिता ॥
तत्त्वयोत्पलमालैका नानीता चेत्कुतोऽपि मे ।
तन्न भार्यास्मि ते नापि भर्ता मम भवानिति ॥
ततस्तदर्थं रात्रौ स राजकीयसरो ययौ ।
तत्प्रविष्टश्च कोऽसीति दृष्ट्वापृच्छ्यत रक्षकैः ॥
चक्राह्वोऽस्मीति च वदन्बद्ध्वा नीतः प्रगे स तैः ।
राजाग्रे पृच्छ्यमानश्च चक्रवाकरुतं व्यधात् ॥
ततः स राज्ञा कथितः स्वयं पृष्टोऽनुबन्धतः ।
मूर्खः कथितवृत्तान्तो मुक्तो दीनो दयालुना ॥

३४. मूर्खवैद्यकथा

कश्चिच्च मूढधीर्वैद्यः केनाप्यूचे द्विजन्मना ।
ककुदं मम पुत्रस्य कुब्जस्याभ्यन्तरं नय ॥
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद् वैद्यो दश देहि पणान्मम ।
ददामि ते दशगुणान् साधयामि न चेदिदम् ॥
एवं कृत्वा पणं तस्माद् गृहीत्वा तान्पणान्द्विजात् ।
स तं स्वेदादिभिः कुब्जमरुजत्केवलं भिषक् ॥
न चाशकत्स्पष्टयितुं ददौ दशगुणान् पणान् ।
को हि कुब्जमृजूकर्तुं शक्नुयादिह मानुषम् ॥
हासायैवमशक्यार्थ - प्रतिज्ञान - विकत्थनम् ।
तदोदर्शैर्मूढमार्गैः संचरेत न बुद्धिमान् ॥

३३. मूर्ख पति की कथा

किसी दरिद्र की चण्डी जैसी एक गृहिणी थी। वह उस दरिद्र मूर्ख पति से बोली "सवेरे मैं पिता के घर जाऊँगी। क्योंकि उत्सव में मैं निमन्त्रित हूँ। परन्तु तुम कहीं से मेरे लिए एक कमल की माला नहीं लाये तो फिर न तो तुम्हारी मैं पत्नी रहूँगी और न तुम मेरे पति रहोगे।"

तब वह रात्रि में राजा के तालाब में गया! तालाब में उसको घुसे हुए देख रक्षकों ने पूछा "तुम कौन हो?" उसने कहा "मैं चकवा हूँ।" इस तरह कहने पर वह बाँधकर राजा के सामने लाया गया। पूछे जाने पर वह चकवे (पक्षी) की बोली में बोला। तब राजा ने उसे आग्रह कर सत्य कहने के लिए कहा। उस मूर्ख की सारी बातें सुन दयालु राजा ने उस दीन को मुक्त कर दिया।

३४. मूर्ख वैद्य की कथा

किसी ब्राह्मण ने किसी मन्दमति वैद्य से कहा—"मेरे कुबड़े पुत्र की कूबड़ को भीतर कर दो।" यह सुन वैद्य ने कहा—"तुम मुझे इसके लिये दस पैसे दो। यदि हमने इसे ठीक नहीं किया तो तुम्हें दस गुना दे दूँगा।" इस तरह कहकर उस ब्राह्मण से पैसों को लेकर वह वैद्य केवल सेंक आदि के द्वारा कूबड़ को ठीक करने लगा।

पर कूबड़ को बराबर नहीं कर सकने पर उसने दसगुने पैसों को दिया। कौन ऐसा है जो कुबड़े मनुष्य को सीधा कर सकता है?

अतः असम्भव बात की झूठी प्रतिज्ञा हास्यास्पद ही होती है। इसलिये बुद्धिमानों को ऐसे मूर्खों के रास्ते पर नहीं चलना चाहिए।

३५. मूर्खशिष्यकथा

गुरोः कस्याप्यभूतां द्वौ शिष्यावन्योन्यमत्सरौ ।
तयोरेको गुरोस्तस्य दक्षिणं पादमन्वहम् ॥
अभ्यज्ञन्क्षालयामास वामं पादं तथेतरः ।
दक्षिणाभ्यञ्जके जातु ग्रामं संप्रेषिते गुरुः ।
अभ्यक्तवामपादं तं द्वितीयं शिष्यमभ्यधात् ॥
त्वमेव दक्षिणं पादमभ्यज्य क्षालयाद्य मे ।
श्रुत्वैतन्मूर्खशिष्योऽसौ गुरुं स्वैरमभाषत ॥
प्रतिपक्षस्य सम्बन्धी न पादोऽभ्यज्ञ्य एष मे ।
एवमुक्तवतश्चास्य निर्बन्धं सोऽकरोद् गुरुः ॥
ततो विपक्षतच्छिष्यरोषादादाय तस्य तम् ।
गुरोः शिष्यः स चरणं बलाद् ग्राव्णा च भग्नवान् ॥
मुक्ताक्रन्दे गुरौ तस्मिन्कुशिष्योऽन्यैः प्रविश्य सः ।
ताड्यमानः सशोकेन गुरुणा तेन मोचितः ॥
अन्येद्युः सोऽपरः शिष्यः प्राप्तो ग्रामाद्विलोक्यताम् ।
अंघ्रिपीडां गुरोः पृष्टवृत्तान्तः प्रज्वलन्क्रुधा ॥
नाहं भनज्मि किं पादं तस्य सम्बन्धिनं द्विषः ।
इत्याकृष्य द्वितीयांघ्रिं गुरोस्तस्य बभञ्ज सः ॥
ततोऽत्र ताड्यमानोऽन्यैरपि भग्नोभयाङ्घ्रिणा ।
गुरुणा तेन कृपया दुःशिष्यः सोऽप्यमोच्यत ॥
सर्वद्वेष्योपहास्यौ तौ शिष्यौ द्वौ ययतुस्ततः ।
गुरुश्च स्वक्षमाश्लाघ्यः स्वस्थः सोऽप्यभवत्क्रमात् ॥
एवमन्योन्यविद्विष्टो मूर्खः परिजनः प्रभो ।
स्वामिनोऽर्थं निहन्त्येव न चाऽऽत्महितमश्नुते ॥

३५. मूर्ख शिष्यों की कथा

किसी गुरु जी के दो शिष्य थे जो आपस में डाह रखते थे। उनमें से एक गुरु जी के दायें पैर को दबाता था तथा दूसरा बायें पैर की तेल लगाकर सेवा करता था। एक बार गुरुजी ने दाहिने पैरका तैलादि से मर्दन करने वाले शिष्य के गाँव भेज दिये जाने पर बायें पैर की सेवा करने वाले शिष्य से कहा—"आज तुम्हीं मेरे दाहिने पैर में भी तेल लगाकर दबाओ।"

यह सुन वह मूर्ख शिष्य गुरुजी से निर्भीकता पूर्वक बोला—"यह पैर मेरे बैरी का है इसलिए इसे मैं नहीं दबाऊँगा।" इस तरह कहने पर गुरु जी ने उसे दबाने के लिए पुनः आदेश दिया। तब उस शिष्य ने गुरु के उस विपक्षी पैर को बलात् पत्थर से तोड़ डाला। गुरु के कष्ट से चिल्लाने पर दूसरे लोग उसे पीटने लगे पर उस शिष्य को कष्ट से पीडित होने पर भी गुरु ने छुड़ा दिया।

दूसरे दिन दूसरा शिष्य गाँव से आया तथा गुरु के उस पैर की पीडा को देखा और उसका कारण पूछा। वृत्तान्त जानकर क्रोध से जलते हुए उसने कहा—"तो क्या मैं उस दुष्ट से सम्बन्धित पैर को नहीं तोड़ दूँगा?

इस तरह कहकर उसने गुरु के दूसरे पैर को खींचकर तोड़ डाला। तब वह दूसरों के द्वारा पीटा जाता हुआ उस टूटे हुए दोनों पैर वाले गुरु की कृपा से छोड़ दिया गया।

तब सबों के द्वेषी बने दोनों शिष्य उपहास के पात्र बने। गुरुजी की क्षमा के लिए सबने उनकी प्रशंसा की और अपनी क्षमा के कारण प्रशंसित गुरुजी धीरे-धीरे स्वस्थ हो गए।

३६. मूर्खजामातृकथा

आगात्कश्चित् पुमान् मूर्खः प्रथमं श्वाशुरं गृहम् ।।
स तत्र तण्डुलाञ्श्वश्रा पाकार्थं स्थापितान्सितान् ।
दृष्ट्वा भक्षयितुं तेषां मुष्टिं प्राक्षिपदानने ।।
तत्क्षणादागतायां च श्वश्र्वां मूर्खः स तण्डुलान् ।
नाशकत्तन्निगिलितुं न चाप्युद्गिलितुं ह्रिया ।।
तत्पीनोच्छूनगल्लं च निरालापमवेक्ष्य तम् ।
तद्रोगशङ्कयाहूय तच्छ्वश्रूः पतिमानयत् ।।
सोऽप्यालोक्य निनायाशु वैद्यं वैद्योऽप्यपाटयत् ।
शोथशङ्की हनुं तस्य मूकस्याक्रम्य मस्तकम् ।।
निर्ययुर्लोकहासेन समं तस्य च तण्डुलाः ।
इत्यकार्यं करोत्यज्ञो न च जानाति गूहितुम् ।।

३७. मूर्खबालककथा

केचिच्च दारका मूर्खा दृष्टदोहा गवादिषु ।
गर्दभीं प्राप्य संरुध्य दोग्धुमारेभिरे रसात् ।।
कश्चिद् दुदोह कश्चिच्च क्षीरकुण्डमधारयत् ।
अहंप्रथमिकान्येषां पयः पातुमवर्तत ।।
न च ते लेभिरे क्षीरं कुर्वन्तोऽपि परिश्रमम् ।
अवस्तुनि कृतक्लेशो मूर्खो यात्यवहास्यताम् ।।

३६. मूर्ख दामाद की कथा

कोई मूर्ख पहली बार श्वसुर के घर आया । उसने सास के द्वारा पकाने के लिए रखे गए उजले चावलों को देखा। उनको देख कर उसने एक मुट्ठी चावल अपने मुँह में डाल लिया। उसी समय उसकी सास आ गई। उसके आने पर लज्जा से न वह चावलों को निगल सका न उगल सका। उसके मोटे एवं फूले हुए गले को देखकर तथा वाणी को बन्द जानकर उसकी सास रोग की आशंका से अपने पति को बुला लायी ।

उस (श्वसुर) ने भी उसे देखा और वह उसे वैद्य के पास ले गया। वैद्य ने सूजन की शङ्का करते हुए उस मूर्ख के मस्तक को बलात् दबाकर उसकी ठुड्डी चीर डाली। चीरने पर चावलों के गिरने के साथ ही लोगों की हँसी निकल आई। इस तरह मूर्ख अकार्य कर देते हैं पर उसको छिपाना नहीं जानते ।

३७. मूर्ख बालकों की कथा

कुछ मूर्ख लड़कों ने गाय आदि दुहने की क्रिया देखी थी। अतः एक गदही को पाकर उसे रोका और बड़े प्रेम से उसे दूहना प्रारम्भ किया। कोई दुहने लगा और कोई दूध रखने के लिए मटका रखने लगा।

"मैं सबसे पहले पीऊँगा, मैं पहले पीऊँगा" इस तरह वे शोरगुल करने लगे। परन्तु वे परिश्रम करते हुए भी उस गदही से दूध नहीं पाये। अतः अवस्तु में परिश्रम करता हुआ मूर्ख हँसी का पात्र बनता है।

३८. ब्राह्मणमूर्खपुत्रकथा

कश्चिच्च देव मूर्खोऽभूद्विप्रपुत्रः पिता च तम् ।
सायं जगाद गन्तव्यो ग्रामः पुत्र त्वया प्रगे ॥
श्रुत्वेत्यपृष्ट्वा कार्यं तं पितरं प्रातरेव सः ।
गत्वा वृथैव तं ग्रामं सायमागात् कृतश्रमः ॥
ग्रामं गत्वाहमायात इत्याह पितरं च सः ।
गते त्वयि च किं सिद्धमिति चाह स तत्पिता ॥
तदेति निरभिप्रायचेष्टितो लोकहास्यताम् ।
मूर्खोऽनुभवति क्लेशं न कार्यं कुरुते पुनः ॥

३९. मूर्खदरिद्रकथा

तथा च निर्धनः कश्चित्प्राप्तवानध्वनि व्रजन् ।
सार्थवाहस्य कस्यापि च्युतां हेमभृतां दृतिम् ।
स मूढस्तां गृहीत्वैव न जगामान्यतोऽपि च ।
स्थित्वा तत्रैव संख्यातुमारेभे हेम तच्च तत् ॥
तावत्स्मृत्वा हयारूढः प्रत्यागत्य स सत्वरम् ।
सार्थवाहोऽस्य दृष्टस्य हेमभस्त्रां जहार ताम् ॥
ततः स दृष्टनष्टार्थः शोचन् प्रायादधोमुखः ।
प्राप्तोऽप्यर्थः क्षणादेव हार्यते मन्दबुद्धिना ॥

४०. मूर्खदर्शककथा

कश्चिच्च पार्वणं चन्द्रं दिदृक्षुः केनचिज्जडः ।
अङ्गुल्यभिमुखं पश्येत्यूचे दृष्टनवेन्दुना ॥
स हित्वा गगनं तस्यैवाङ्गुलिं तां विलोकयन् ।
तस्थौ न चेन्दुमद्राक्षीदद्राक्षीद्धसतो जनान् ॥

३८. ब्राह्मण के मूर्ख पुत्र की कथा

हे राजन् ! ब्राह्मण का कोई मूर्ख पुत्र था। शाम को पिता ने उससे कहा—"पुत्र ! तुम्हें सवेरे गाँव जाना है।" सवेरे वह पुत्र पिता से काम को बिना पूछे ही गाँव चला गया। व्यर्थ ही परिश्रम कर गाँव जाकर शाम को लौटकर आया और पिता से बोला—"गाँव जाकर मैं लौट आया।"

"तुम्हारे जाने पर भी क्या कोई काम मेरा सिद्ध हुआ ? (अतः तुम्हारे जाने से क्या लाभ हुआ ?)" पिता ने ऐसा कहा। इस तरह बिना अभिप्राय समझे काम करने वाले मूर्ख हँसी का पात्र बनते हैं। वे मूर्ख परिश्रम से क्लेश भी पाते हैं और कार्य भी सिद्ध नहीं होता है।

३९. मूर्ख दरिद्र की थका

किसी निर्धन व्यक्ति ने रास्ते में जाते हुए किसी सार्थवाह (सामुद्रिक व्यापारी) के गिरे एवं सोना से भरे हुए झोले को पाया। वह मूर्ख उसे लेकर कहीं दूसरी जगह नहीं गया, अपितु उसी जगह सोने की गिन्नियों को गिनना शुरू कर दिया।

तब अपने झोले को याद कर वह सार्थवाह घोड़े पर चढ़ा हुआ शीघ्र ही वहाँ आया और सोने से भरे हुए झोले को उससे छीन लिया। तब वह सूर्ख पाये हुए धन को खोकर नीचे मुँह करके चला गया। इस प्रकार मूर्ख के द्वारा पाया हुआ धन भी चला जाता है।

४०. मूर्ख दर्शक की कथा

कोई मूर्ख पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखने का इच्छूक था। नये उगे हुए चन्द्रमा को देखने वाले किसी व्यक्ति ने अङ्गुली से इशारा कर उस मूर्ख से कहा—"देखो, वह चन्द्रमा है।" वह मूर्ख आकाश को छोड़कर उसकी उसी अङ्गुली को देखता रहा, पर चन्द्रमा को नहीं देख पाया। केवल हँसते हुए लोगों को ही देखा। अर्थात् अङ्गुली की तरफ देखने की उसकी क्रिया को देख लोग खूब हँस रहे थे।

४१. मूर्खकृपणकथा

कदर्यः कोऽप्यभूत्क्वापि मूर्खष्टक्को महाधनः ।।
सभार्यः स सदा भुङ्क्ते सक्तूंल्लवणवर्जितान् ।
अन्यस्यान्नस्य बुबुधे नैव स्वादं स जातुचित् ।।
एकदा प्रेरितो धात्रा स भार्यामब्रवीन्निजाम् ।
क्षीरिणीं प्रति जाता मे श्रद्धा तामद्य मे पच ।।
तथेति तस्य सा भार्या पपाच क्षीरिणीं तदा ।
तस्थौ चाभ्यन्तरे गुप्तं स टक्कः शयनं श्रितः ।
दृष्ट्वा प्राघुणिकः कश्चिदत्र मे मास्मभूदिति ।
तावत्तस्य सुहृद् धूर्तष्टक्कस्तत्रैक आययौ ।
क्व ते भर्तेति पप्रच्छ स च तां तस्य गेहिनीम् ।
साप्यदत्तोत्तरा तस्य प्राविशद्भर्तुरन्तिकम् ।।
आख्यातमित्रागमना सोऽपि भार्यां जगाद ताम् ।
उपविश्येह रुदती पादावादाय तिष्ठ मे ।।
भर्ता मे मृत इत्येवं वदेश्च सुहृदं मम ।
ततो गतेऽस्मिन्नावाभ्यां भोक्तव्या क्षीरिणी सुखम् ।।
इत्युक्ता तेन यावत्सा प्रवृत्ता रोदितुं तदा ।
तावत्प्रविश्य सोऽपृच्छत्किमेतदिति तां सुहृत् ।।
भर्ता मृतो मे पश्येति तयोक्तः स व्यचिन्तयत् ।
क्व पचन्ती मया दृष्टा सुखिता क्षीरिणीमियम् ।।
क्वाधुनैव विपन्नोऽयमेतद्भर्ता विना रुजम् ।
नूनं मां प्राघुणं दृष्ट्वा कृतमाभ्यामिदं मृषा ।।

४१. मूर्ख कंजूस की कथा

किसी जगह टक्क जाति का कोई एक महाधनी मूर्ख एवं कंजूस रहता था। वह अपनी पत्नी के साथ सदा ही बिना नमक का सत्तू खाया करता था। उसने कभी दूसरे अन्न का स्वाद नहीं लिया। एकबार वह संयोगवश स्वयं प्रेरित होकर अपनी पत्नी से बोला— "खीर खाने की मेरी रुचि हो गई है, अतः आज मेरे लिये खीर बनाओ।" "ठीक है" ऐसा उसकी पत्नी ने कह खीर बनाया।

वह टक्क घर के भीतर गुप्त बिछौने पर छिप गया, ताकि कोई अतिथि (नवागन्तुक) उसे देखकर न आ जाय। तब तक कोई उसका धूर्त मित्र टक्क वहाँ आया। उसने आकर उसकी पत्नी से पूछा "तुम्हारे पति कहाँ हैं ?" उसकी पत्नी बिना उत्तर दिए पति के पास चली गयी और उसने उससे मित्र के आने की बात कही !

तब उसके पति ने उससे कहा "यहाँ बैठकर मेरे पैरों को पकड़ लो तथा रोती हुई बैठ जाओ और मेर उस मित्र से कहना कि मेरे पति मर गए हैं। तब उसके चले जाने पर हमलोग मौज से खीर खायेंगे।" उसके इस तरह कहने पर जब उसने रोना प्रारम्भ किया, तब उसने प्रवेश कर उस स्त्री से पूछा "यह क्या ?"

उस स्त्री ने कहा—"यह देखो, तुम्हारे मित्र और मेरे पति मर गए।" उसके ऐसा कहने पर उसने सोचा-अभी तो कहाँ यह सुख-पूर्वक खीर बना रही थी और अभी कहा से इसका पति बिना रोग का ही मर गया ? निश्चित ही मुझ को देख इन दोनों ने झूठ बोला है।

तन्मया नैव गन्तव्यमित्यालोच्योपविश्य सः ।
धूर्तो हा मित्र हा मित्रेत्याक्रन्दंस्तत्र तस्थिवान् ।।

श्रुताक्रन्दाः प्रविश्यात्र बान्धवा मृतवत्स्थितम् ।
श्मशानं भौतटक्कं तं नेतुमासन् समुद्यताः ।।

उत्तिष्ठ बान्धवैर्यावदेतैर्नीत्वा न दह्यसे ।
इत्युपांश्ववदत्कर्णमूले भार्या तदा च तम् ।।

मैवं शठोऽयं टक्को मे क्षीरिणीं भोक्तुमिच्छति ।
नोत्तिष्ठामि तदेतस्मिन्नगतेऽहं मृतो यदि ।।

प्राणेभ्योऽप्यन्नमुष्टिर्हि मादृशानां गरीयसी ।
इति प्रत्यब्रवीद्भार्यामुपांश्वेव स तां जडः ।।

ततस्तेन कुमित्रेण नीत्वा तैः स्वजनैश्च सः ।
दह्यमानोऽपि निश्चेष्टो ददौ नामरणाद्वचः ।।

एवं स मूढो विजहौ प्राणान्न क्षीरिणीं पुनः ।
क्लेशार्जितं च बुभुजे तस्यान्यैर्हेलया धनम् ।।

अतः "मैं अब यहाँ से नहीं जाऊँगा" ऐसा बार-बार विचार कर वहीं वह धूर्त्त बैठकर "हाय मित्र ! हाय मित्र करने लगा तथा नकली रुलाई रोता हुआ ठहर गया।

रुलाई सुनकर पास-पड़ोस के बन्धु-बान्धव आ गए और उन लोगों ने मृतक के समान पड़े हुए उस मूर्ख टक्क को देख विचार किया कि इसे श्मशान ले जाना चाहिए। वे सभी श्मशान ले जाने के लिए उद्यत हो गए।

तब उसकी पत्नी ने फुस-फुसाकर उसके कान के पास कहा-- "कहीं ये तुम्हें ले जाकर जला न दें, अतः उठ जाओ।" तब उस मूर्ख ने फुसफुसाकर ही अपनी पत्नी से कहा—"नहीं, ऐसा नहीं करूँगा। क्यों कि यह दुष्ट टक्क मेरे खीर को खाना चाहता है। अतः बिना इसके गए नहीं उठूँगा, चाहे मुझे प्राणों को भी गवाँना पड़े। मुझ जैसे लोगों के लिए मुट्ठी भर भी अन्न अन्य किसी को देना मुश्किल है।"

तब वह कुमित्र और वे बान्धव उसे श्मशान ले गए। पर जलाये जाने पर भी मरण पर्यन्त उस मूर्ख ने निश्चेष्टता बरती और मुख से वाणी न निकाली। इस तरह उस मूर्ख ने अपने प्राणों को खोया पर खीर को नहीं दिया। तब उसके बड़े दुःख से उपार्जित धन को दूसरों ने खूब छककर उड़ाया।

४२. मूर्खोपाध्यायकथा

उज्जयिन्यामुपाध्यायो मुग्धः कोऽप्यभवन्मठे ।।
तत्र निद्रा न तस्याभून्मूषकोपद्रवान्निशि ।
तत्खिन्नस्तच्च सुहृदे स कस्मैचिदवर्णयत् ।।
मार्जारं स्थापयानीय सोऽत्र खादति मूषकान् ।
इति सोऽपि सुहृद्भिस्तमुपाध्यायमब्रवीत् ।।
मार्जारः कीदृशः क्वास्ते न स दृष्टचरो मया ।
इत्युक्तवत्युपाध्याये तं सुहृत्सोऽब्रवीत्पुनः ।।
काचरे लोचने तस्य वर्णः कपिलधूसरः ।
पृष्ठे च लोमशं चर्म रथ्यास्वटति चेह सः ।।
तदेभिस्त्वमभिज्ञानै - रन्विष्यानाययाशु तम् ।
मित्र मार्जारमित्युक्त्वा तत्सुहृत्स ययौ गृहम् ।।
ततः शिष्यानुपाध्यायः स जगाद जडो निजान् ।
अभिज्ञानानि युष्माभिः श्रुतान्येव स्थितैरिह ।।
तदन्विष्यत मार्जारं रथ्यासु तमिह क्वचित् ।
तथेति ते गताः शिष्यास्तत्र भ्रेमुरितस्ततः ।।
तथापि न तु तैर्दृष्टो मार्जारः स कदाचन ।
अथैकं ते वटुं रथ्यामुखादैक्षन्त निर्गतम् ।।
काचरं नेत्रयुगले वर्णे धूसरपिङ्गलम् ।
पृष्ठोपरि दधानं च लोमशं हरिणाजिनम् ।
दृष्ट्वा तं सैष मार्जारः प्राप्तोऽस्माभिर्यथाश्रुतः ।
इत्यवष्टभ्य तं निन्युरुपाध्यायान्तिकं च ते ।।

४२. मूर्ख उपाध्याय की कथा

उज्जयिनी के किसी मठ में कोई मूर्ख (उपाध्याय) रहते थे। उस मठ में बहुत से चूहे थे। उन चूहों के उपद्रव से उनको नींद नहीं आती थी। अतः खिन्न हो इस बात को उन्होंने अपने किसी मित्र से कहा। उनके मित्र ने सलाह दी कि "आप बिल्ली रखें। बिल्ली चूहों को खा जाती है।" उनके ऐसा कहने पर उपाध्याय ने कहा—"बिल्ली कैसी होती है? कहाँ रहती है? मैंने आज तक कभी नहीं देखा।"

उपाध्याय के ऐसा कहने पर उस मित्र ने पुनः यों कहा—"बिल्ली की दो चमकीली आँखें होती हैं। उसका रङ्ग कुछ पीला-पन लिए हुए (मटमैला) धूसर होता है। उसकी पीठपर रोम-युक्त चमड़ा होता है। वह गलियों में घूमती है। तो हे मित्र! इस तरह से तुम उसको पहचान कर शीघ्र लाओ। इस प्रकार कहकर वह चला गया।

तब वह मूर्ख उपाध्याय अपने शिष्यों से बोला—"तुम लोगों ने यहाँ बैठे-बैठे बिल्ली के लक्षणों को सुना ही। अतः उस बिल्ली को आस-पास की गलियों में खोजो।" "बहुत अच्छा" कहकर शिष्य इधर-उधर घूमने लगे। पर कोई बिल्ली कहीं न दीख पड़ी।

उसी समय गली से निकलते हुए किसी ब्रह्मचारी (बटु) को उन लोगों ने देखा। उस ब्रह्मचारी की आँखें चमकीली थीं, वह मटमैले पीले वर्ण का था और पीठ पर रोमयुक्त मृगचर्म धारण किया था। उसे देखकर "यह वही बिल्ली है जिसे हम लोगों ने सुन रखा है" इस तरह कहते हुए वे उसे पकड़कर उपाध्याय जी के पास ले गए।

उपाध्यायोऽपि मित्रोक्तैर्युक्तं मार्जारलक्षणैः ।
दृष्ट्वा तं स्थापयामास रात्रौ तत्र मठान्तरे ॥
मार्जारो नूनमस्तीति मेने सोऽपि वटुर्जडः ।
मार्जाराख्यां कृतां शृण्वन्नात्मनस्तैरबुद्धिभिः ॥
स च भीतो बटुः शिष्यस्तस्य विप्रस्य येन तत् ।
उपाध्यायस्य तस्योक्तं मैत्र्या मार्जारलक्षणम् ॥
प्रातः सोऽत्रागतो विप्रो बटुमन्तर्विलोक्य तम् ।
इह केनायमानीत इति भीतानुवाच तान् ॥
श्रुतोपलक्षणस्त्वत्तो मार्जारोऽस्माभिरेष सः ।
आनीत इत्युपाध्यायो भीतः शिष्याश्च तेऽवदन् ॥
ततो विहस्य सोऽवादीद्विप्रो मूढाः क्व मानुषः ।
क्व च तिर्यक्स मार्जारश्चतुष्पात्पुच्छवानपि ॥
तच्छ्रुत्वा तं बटुं मुक्त्वा तेऽब्रुवन्मन्दबुद्धयः ।
तर्ह्यन्विष्यानयामस्तं मार्जारं तादृशं पुनः ॥
एवमुक्तवतो मूढाञ्जनस्तत्र जहास तान् ।
अज्ञता नाम कस्येह नोपहासाय जायते ॥

उपाध्याय जी ने भी मित्र के द्वारा कहे गए बिल्ली के लक्षणों से मिलाकर "निश्चित ही यह बिल्ली है" ऐसा मानते हुए उस ब्रह्मचारी को रात्रि में मठ में ही रख लिया।

उस ब्रह्मचारी ने भी उन मूर्खों के द्वारा अपना नाम "मार्जार" कहने पर अपना नाम "मार्जार" समझ लिया। (अर्थात् उसने यह नहीं कहा कि वह मार्जार (बिल्ली) नहीं है। क्योंकि वह मार्जार शब्द का अर्थ नहीं जानता था। वह मूर्ख ब्रह्मचारी उसी ब्राह्मण का शिष्य था जिसने उपाध्याय की मित्रता से बिल्ली का लक्षण बताया था।

सबेरे ही वह विप्र पुनः (संयोगवश) वहाँ आया और उस ब्रह्मचारी को वहाँ देखकर उसने मूर्खों से पूछा—"इसे यहाँ कौन लाया है ?" "आप से ही बिल्ली का लक्षण सुन कर हम लोग इसे यहाँ लाये है" इस प्रकार मूर्ख उपाध्याय एवं शिष्य बोले।

तब हँसकर उस विप्र ने कहा—"अरे मूर्खों! कहाँ यह मनुष्य और कहाँ बिल्ली तिर्यग् (पशु) की योनि, जो चतुष्पद और पूँछ वाली होती है।" यह सुनकर उन मूर्खों ने उस ब्रह्मचारी को मुक्त कर उस विप्र से कहा--तो हमलोग पुनः वैसी ही बिल्ली खोजकर लाते हैं।" इस तरह उनके कहने पर उस ने उनको खूब हँसा।

इस संसार में किसी की भी मूर्खता उपहास के लिए ही होती है।

परिशिष्ट भाग

१. गुरु-सरलीकरण-कथा

वर्धमानपुरे पुरे श्रीभटो भरटकः। तस्य धीजडो नाम शिष्योऽतिमूर्खः। स एकदा नगरमध्ये भिक्षार्थं गतः। तत्र च कस्यचित् सूत्रधारस्य गृहे सूत्रधारेणातिवक्रं वंशं तैलाभ्यङ्गपूर्णं वह्नितापेन सरलीक्रियमाणं ददर्श। तं तथा कुर्वन्तं दृष्ट्वा स धीजडः सूत्रधारं पप्रच्छ। किमिदं क्रियमाणमस्ति। ततस्तेनोक्तम्। वक्रवंशस्य सरलत्वम्। ततः स चिन्तयति। वातविकारेण वक्रीभूतस्य मद्गुरोरपीदमेवौषधं भवतु। सर्वत्राऽप्ययमेव सरलीकरणे प्रकारः।

ततः स धीजडो मठिकां गत्वा स्वगुरुं तैलाभ्यङ्गपूर्वकं वह्ना वत्यर्थं तापयति स्म। तापदूनश्च वराको गुरुः पूत्करोति स्म। तदाक्रन्दं च श्रुत्वा भूयांल्लोको मिलितस्तं वारयति स्म। अरे मूर्ख मैवं स्वगुरुं विलम्बय। एवं क्रियमाणे हि वृद्धास्यास्य प्राणा एव यास्यन्ति। एवं लोकाक्रोशान् श्रुत्वा स प्रतिवक्ति। यथा। भवन्त एव मूर्खा भवतां जनकाश्च मूर्खाः। अहं तु स्वगुरोर्वक्रस्य सरलत्वं कुर्वाणोऽस्मि। भवतां केयं परितप्तिः। ततो लोको बहु क्रोशयन् बलात्कारेण तं मोचयामास।

१ गुरु को सीधा करने की कथा

वर्धमानपुर नामक नगर में एक श्रीभट नाम का भरटक[1] रहता था। उसका एक धीजड़ नामका अत्यन्त मूर्ख शिष्य था। वह एक बार नगरमें भिक्षा मांगने के लिये गया। वहाँ किसी लोहार के घर उसने देखा कि लोहार किसी अत्यन्त टेढ़े बाँस को तेल लगाकर और आग से तपा कर उसे सीधा कर रहा है। उसे ऐसा करते हुए देखकर धीड़ज ने उससे पूछा कि यह क्या हो रहा है ? उसने कहा कि टेढ़ा बाँस सीधा किया जा रहा है। तब धीजड़ ने सोचा कि बात के रोग से हमारे गुरुजी का शरीर जो टेढ़ा हो गया है उसके लिये भी यही दवा की जाय क्योंकि सब जगह के लिए टेढ़ेको सीधा करने का यही तरीका है।

इसके बाद वह धीजड़ शिष्य अपने स्थान पर जाकर अपने गुरुको तेल लगाकर आग से तपाने लगा। आग की गर्मी से दुखी होकर वह बेचारा गुरु चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहट सुन कर बहुत लोग इकट्ठा हो गये और उसे रोकने लगे। अरे मूर्ख ! इस प्रकार अपने गुरु की दुर्दशा मत कर। ऐसा करने से तो इस बूढ़े के प्राण ही चले जायेगें। इस प्रकार लोगों से निन्दा सुनकर वह बोला-तुम लोग मूर्ख हो और तुम लोगों के बाप मूर्ख हैं। मैं तो अपने टेढ़े गुरुजी को सीधाकर रहा हूँ। इसमें तुम लोगों को क्या तकलीफ हो रही है ? तब लोगों ने बहुत बिगड़ते हुए जबरदस्ती उस (गुरु) को छुड़ाया।

---

१. एक प्रकार का साधु या भिक्षुक।

२. स्वाप्निकवस्तुभोजनकथा

नन्दिग्रामे दुर्मतिनामा भरटको वसति सर्वलोकेभ्यो भोजनाजीवी। स एकदा शरदि कस्यापि कौटुम्बिकस्य गृहे भिक्षार्थं गतः। तेन गृहस्वामिना माहषं सुशीतलं पिण्डरूपं दधि यथेष्टं दत्तम्। तेन हृष्टेन मठिकामागत्य कण्ठलौल्याद् दधि भुक्तम्। तद्वशान्निशि तस्य निद्रा भृशमागता। ततो निद्रामध्ये स्वप्नं पश्यति। यथा—ममैषा मठी सर्वापि विविध-पक्वान्न-खाद्यपेयादि-रसवती-पूर्णास्तीत्यादि। ततो जागरूकः सन् चिन्तयति। ममैषा मठी सर्वाऽपि भोज्यपूर्णाऽस्ति। अहमेकाकी चैतावता भोजनेन किं करिष्ये? सर्वं मुधैव मा विनश्यतु। ततोऽद्य यथेष्टदायकं लोकं सकलं भोजयाम्यनृणी-भवामि च। तत उत्थाय मठिकायामेव तालकं दत्त्वा सर्वोऽपि लोकः सकुटुम्बो भोजनाय निमन्त्रितः। ग्राममध्ये सर्वगृहेषु चुल्हकेषु वारि क्षिप्तम्। एवं मध्याह्ने सर्वस्मिन् लोके मिलिते भोक्तुं समुत्सुक आसनानि मण्डितानि। पंक्ति-रुपविष्टा। ततो यावता भौतिको मठीद्वारमुद्घाटच पश्यति तावता किमपि न पश्यति। रिक्तैव मठी। ततः स तरल-लोचन इतस्ततः कोणकादिकं सर्वं विलोकयति। परं किमपि न पश्यति। तावता तथैव रात्रिवन्मण्डपे पटीं विस्तार्य स्वप्नार्थं सुप्तः। लोकाः सर्वेऽपि बुभुक्षया म्रियमाणाः परि-वेषणाय तमाकारयन्ति। कथयन्ति च। कुतः स्वपिषि? कस्मान्न परिवेषयसि? स प्रतिवक्ति। भो लोकास्तावता प्रतीक्षध्वं यावता विविध-पक्वान्नादि-भृतां मठिकां स्वप्नदर्शनवत् सम्प्रत्यपि दृष्ट्वा सर्वं भोज्यमानीय युष्मान् भोजयामि। इति तद्वाक्यश्रवणोद्भूतकोपाटोपा लोकास्तन्मौर्ख्यं निन्दन्तः स्वगृहं गताः कष्टेन पाश्चात्यप्रहरे भुक्ताः। एवं धीमद्भिः स्वप्नोपलब्धिमात्रेण न प्रवर्तितव्यम्।

२. स्वप्न में प्राप्त वस्तुओं से भोजन कराने की कथा

नन्दिग्राम में एक दुर्मति नाम का भिक्षुक रहता था जो लोगों के यहाँ भोजन कर जीता था। वह एक समय शरद ऋतु में किसी गृहस्थ के घर भिक्षा के लिये गया। उस गृहस्थ ने भैंस का खूब ठंठा और गाढ़ा दही इच्छानुसार उसे दे दिया। उस भिक्षुक ने प्रसन्न होकर कुटी में आ कण्ठलोभ से सब दही खा लिया। उसके कारण रात में उसे गहरी नींद आ गई। तब नीदमें उसे स्वप्न हुआ। देखता है कि मेरी यह कुटी नाना प्रकार के पक्वान्न, खाद्य, पेय आदि वस्तुओं से भरी हुई है। तब जागने पर वह सोचता है कि मेरी सारी कुटी भोज्य पदार्थों से भर गई है। और मैं अकेला इतना भोज्यवस्तु रखकर क्या करूँगा। अतः यह सब बेकार ही नष्ट न हो जाय इसलिये आज मैं, मुझे भोजन कराने वाले सभी लोगों को खिलाकर उऋ॑ण हो जाऊँ। यह सोचकर उसने उठकर तथा कुटी में ताला लगाकर सब लोगों को सपरिवार भोजन के लिए निमन्त्रित कर दिया। गाँव में सब लोगों के घर चूल्हे में पानी डाल दिया गया। इस प्रकार मध्याह्न में सब लोगों के आने और भोजन के लिए तैयार होने पर आसन लगा दिया गया। पंघत बैठ गई। अब जब वह भिक्षु कुटी का द्वार खोलकर देखता है तो यहाँ कुछ नहीं है। तब वह चंचल आखों से इधर-उधर और सभी कोनों की ओर देखने लगा। तब भी उसे कुछ नहीं दीखा। तब फिर वह रात की ही तरह सपना देखने के लिये सो गया। इधर सब लोग भूख के मारे उसे परोसने के लिये बुलाने लगे और कहने लगे—क्यों सो रहे हो, परोसते क्यों नहीं? तब उसने उत्तर दिया—अरे भाई, तब तक आप लोग प्रतीक्षा कीजिये। मैं पक्वान्न एवं भोज्य पदार्थों से भरी कुटी देखकर आप लोगों को खाद्य पदार्थ लाकर खिलाता हूँ। उसकी यह बात सुनकर सभी लोग अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसकी निन्दा करते हुए अपने-अपने घर चले गये और बड़े कष्ट से पिछले पहर भोजन किया। बुद्धिमानों को इस प्रकार स्वप्न में किसी वस्तु के मिलने के भरोसे कोई काम नहीं ठानना चाहिये।

३. काकभोजनकथा

मरुस्थल्यां सोलोकग्रामे बहवो भौतिका वसन्ति स्म। एकदा ते स्वचक्रपुरस्ताद् स्वयजमानानां बर्धापनाय चलिताः। तैः सहैकः सुविचारः पण्डितोऽपि चलितः। एवं तेषां मार्गे गच्छतां मध्याह्नं जातम्। अतिबुभुक्षितैर्भौतिकैः सर्वतो भक्ष्यं विलोकयमान एकं महद्धान्यक्षेत्रं दावाग्निदग्धं दृष्टम्। तन्मध्येऽर्धदग्धान् बहून् काकान् दृष्ट्वा ते गलमोटनपूर्वकं खादितुं प्रवृत्ताः। ततः सुविचारेणोक्तम्। आः पापैः किमारब्धम्? पूर्वं मांसमेव न खाद्यं किं पुनः काकसत्कम्। इदं चाण्डालोचितं कर्म कस्मादारब्धं भवद्भिः? ततस्तैरुक्तम्—काकाः खाद्या उक्ताः सन्ति। पण्डितेनोक्तम्—क्व? भौतिकैरुक्तम्—मातृकायाम्। यथा—क ख ग घ ङ इति। केति काकाः, खेति खाद्याः, गेति गलं मोटयित्वा, घेति घनाः, ङेति ङवद् वक्रीकृत्य। ततः सुविचारेणाचिन्ति। मूर्खा एते कल्पितात् प्रवर्तमानाः कल्पितेनैव वार्याः। ततश्चोक्तम्। भो भौतिका भवतामग्रतो मातृकायाति? तैरुक्तम्—नायाति। तेनोक्तम्—तर्हि तत्रैवाग्रे त थ द ध नेति निषिद्धमस्ति। तैरुक्तम्—कथम्? तेनोक्तम्—तथेति तथापि, दधेति दग्धाः, न इति न खाद्याः। ततस्तस्य पण्डितस्य वचसा सर्वेऽपि भौतिकाः काकखादनतो निवृत्ताः।

३. कौओं को खाने की कथा

मरुस्थली के सोलोक नामक ग्राम में बहुत से भिक्षुक रहते थे। एक बार वे सब अपने दल के साथ अपने यजमानों को आशीर्वाद देने के लिये चले। उनके साथ एक अच्छे विचारवाला पण्डित भी चला। इस प्रकार चलते-चलते रास्ते में मध्याह्न हो गया। सभी भौतिक अत्यन्त भूखे होकर जब चारों ओर कोई खाने योग्य वस्तु देख रहे थे तो उन्हें वन की आग से जला हुआ एक बहुत बड़ा धान का खेत दीख पड़ा। उस खेत में आधे जले हुए बहुत-से कौओं को देख कर वे उन्हें गला मरोड़ कर खाने को तैयार हो गये। तब सुविचार पण्डित ने कहा—अरे पापियों! यह क्या काम करने लगे? प्रथम तो मांस ही नहीं खाना चाहिये फिर कौओं के मांस के लिये क्या कहना! यह चाण्डालों जैसा काम क्यों तुम लोग करने लगे? तब उन लोगों ने उत्तर दिया—कौए खाने योग्य कहे गये हैं। पण्डित ने कहा—कहाँ कहे गये हैं? भौतिकों ने कहा—वर्णमाला में। जैसे कि—क ख ग घ ङ। क माने कौए, ख माने खाने योग्य, ग माने गला मरोड़कर, घ माने घने और ङ माने ङ की तरह टेढ़ा करके। तब सुविचार ने सोचा—ये जो भौतिक बातें बना रहे हैं तो उन्हें उसी प्रकार बात बनाकर ही इस काम से रोकना चाहिये। तब पण्डित ने कहा—अरे भौतिकों! तुमको आगे की वर्णमाला भी आती है? उन लोगों ने कहा—नहीं आती है। तो उसी के आगे त थ द ध न कहकर (कौओं का खाना) निषिद्ध कर दिया गया है। तथ माने तथापि, दध माने दग्ध (जले हुए) न माने नहीं (खाने चाहिये)। तब उस पण्डित के कहने से सब भौतिक कौओं के खाने से विरत हो गये।

४. सुविचारशण्डकथा

संग्रामे सुविचारो नाम जडयस्ति । स भिक्षार्थं कस्यचिद् गृहे याति, तस्य च गृह एकं वक्रभृङ्गं स्थूलवपुषं शण्डं पश्यति । ततः प्रतिदिनं विचारयति । किं मम मस्तकमेतस्य शृङ्गयोरन्तराले माति न वा ! एवं षड्मासी गता । एताव-द्विचारेण कार्यं कृतं सुकृतं भवति । विमृश्य शिरः क्षिप्तम् । तावता शण्डो बन्धनं त्रोटयित्वा पलायितः पुरमध्ये बभ्राम च । जटी तु तदग्रे लम्बमानो विरौति । तावता भूयांसो लोका मिलिताः । तैर्महता कष्टेन मोचितः । ततो लोकैश्चोक्तम्—अरे मूर्ख ! त्वमविचार्यकार्योऽसि । स वक्ति—भवन्तो मूर्खा अविचारितकार्याश्च । मया त्विदं कार्यं षड्मासविचारेण कृतम् । ततो लोकैराकृष्टम् ।

४. सुविचार जटी और साँढ की कथा

संग्राम गाँम में एक सुविचार नाम का जटी (साधु) था। वह किसी के घर भिक्षा के लिये जाया करता था और उसके घर एक गोल सींघवाले मोटे शरीर के सांड को देखता था। फिर वह प्रतिदिन यह सोचता था कि इस सांड के दोनों सींघों के बीच मेरा मस्तक आ सकता है या नहीं। इस प्रकार से सोचते छ मास बीत गये। तब उसने सोचा कि अब अपना सिर सींघ के बीच में डाल दूं। क्योंकि इसे बिचारते हुए तो मेरे छ मास बीत गये। इतने दिनों तक विचार कर जो काम किया जाता है वह तो अच्छा ही होता है। ऐसा सोचकर उसने शिर डाल दिया। तब तक वह सांड बन्धन तोड़कर भाग निकला और नगर में घूमने लगा। साधु तो उसके सींघ में लटके हुए चिल्ला रहे थे। इतने में बहुत लोग आ गये और बड़े कष्ट से साधु को छोड़ाया। तब उन लोगों ने कहा—अरे मूर्ख ! तुम विना विचार किये काम करते हो। तब उसने कहा—तुम लोग मूर्ख हो और विना विचारे काम करते हो। मैंने तो यह छ महीने तक सोचने-विचारने के बाद किया है। तब लोगों ने उसे दुत्कारा-फटकारा।

५. उद्घोषकशिष्यकथा

सुबालाग्रामे टिक्कको जटी। तस्यैक उद्घोषकः शिष्योऽभूत्। एकदा तस्य गुरुः श्लेष्मविकारेण भृशं पीडितः। ततः शिष्येण वैद्यपार्श्वे तदौषधं पृष्टम्। वैद्येनोक्तम्—गुड, दाडिम, सूंठि, मिरी इति। ततो मार्गं आगच्छन् शिष्य उद्घोषयति पदच्छेदमकुर्वाणः। ततो मठयासन्नागमने जातं यथा—गुडदा, डिमसुं, ठिमरी इति। ततो मठ्यामागत्य प्रथमाद्यं गुडदा इत्यौषधं कृतम्। ततोऽग्रतनौषधद्वयार्थं पृच्छायै पुनर्वैद्यगृहे गतः शिष्यः पृष्टं च—भो वैद्य! मया त्वदुक्तं गुडदा इत्यौषधं गुरोः कृतम्। अग्रेतनस्य डिमसुं, ठिमरी तस्य कोऽर्थः? ततो वैद्येनोक्तम्—महामूर्ख पापिष्ठ किं कृतम्? त्वया वराको गुरुर्मुधा मारितः। पश्चात्तदौषधचतुष्कं व्यक्त्या प्रोच्यार्पितं च स्वगृहात्।

५. उद्घोषक नामक शिष्य की कथा

सुबाला ग्राममें टिक्कक नाम का एक जटी था। उसका एक उद्घोषक नाम का शिष्य था। एक बार उसके गुरु कफ के विकार से बहुत पीड़ित हुए। तब शिष्यने वैद्य के पास जाकर उनसे औषध पूछा। वैद्य ने कहा—गुड, दाडिम, सूँठ और मिरच (यह दवा है)। तब रास्ते में आते समय वह शिष्य बिना पद अलग-अलग किये ही (दवा का नाम) रट रहा था और मठ के पास आते-आते वह 'गुडदा, डिमसुं, ठिमरी' ऐसा हो गया। फिर शिष्य ने मठ में आकर सर्वप्रथम पहली दवा 'गुडदा' दे दी। फिर आगे की दोनों औषधियों को पूछने के लिये फिर वैद्य के घर गया और पूछा। वैद्यजी ! मैंने आपकी कही हुई गुडदा औषधि तो दे दी पर आगे की दवा डिमसुं और ठिमरी का क्या अर्थ है? तब वैद्यने कहा—अरे महामूर्ख पापिष्ठ ! यह तुमने क्या किया ? तुमने बेचारे गुरुको बेकार ही मार डाला। फिर उन्होंने चारों औषधियों को साफ-साफ बतला कर अपने घर से दे दिया।

६. शिष्यद्वयकलहकथा

सोहलग्रामे करमन्दो जटी । तस्योभौ शिष्यौ । तावेकदा निशायां मेघसमाच्छन्ने नभसि विद्युद्दीपं दृष्ट्वा विवदाते । यथा—एकेनोक्तम्—भोः पश्य पश्य । नभसि प्रदीपनं लग्नम् । तज्ज्वाला एता दृश्यन्ते । द्वितीयेनोक्तम्—मा मृषा वद । इयं शकटिकास्ति । अस्या ज्योतिश्चक्रं सर्वं शीतपीडितं तापयदस्ति । इत्यादिकलहं कृत्वा शिष्याभ्यां गुरुसमीपे सन्देहः पृष्टः । भो गुरो, किमिदमिति । गुरुरपि तद् दृष्ट्वाऽजानन् स्वयमेव किञ्चित् कल्पयित्वा वक्ति—भो शिष्यौ ! नेदं प्रदीपनं नैषा च शकटिका ज्वलन्त्यस्ति । किन्तु सूर्यो मुखं कन्थयित्वा विलोकयन्नस्ति—किं सुप्रभातं न वेति । यदि प्रभातं भवति तदा अहमप्युदयं करोमि नाऽन्यथा । इत्युक्त्वा विवादो भग्नः ।

६. दो शिष्यों के कलह की कथा

सोहल ग्राम में एक करमन्द नाम का जटी था। उसके दो शिष्य थे। वे दोनों एक समय रात में बादलों से घिरे आकाश में विजली को दीपक जैसा देखकर विवाद करने लगे। उनमें से एक ने कहा—अरे देखो, आकाश में आग लग गई है। उसकी ज्वाला दीख रही है। दूसरे ने कहा झूठ मत बोलो। यह सिगडी है। इसकी ज्योति सभी ठंढी से पीडित लोगों को तपा रही है, गर्म कर रही है। इस प्रकार झगड़ा कर दोनों शिष्यों ने गुरु के पास जाकर सन्देह के वारे में पूछा—गुरुजी ! यह क्या है ? गुरु ने भी उसे देखकर विना समझे ही कुछ बात बनाते हुए कहा–अरे चेलों, यह न आग है न सिगडी। किन्तु सूर्य अपना मुँह लटकाए देख रहा है कि अभी सबेरा हुआ है या नहीं ? यदि सबेरा हुआ है तभी हम भी उगेगें नहीं तो नहीं। ऐसा कहने पर झगड़ा खतम हो गया।

७. मोढकशिष्यकथा

लक्ष्मीपुरे पुरे धक्कटो जट्यस्ति। तस्य मोढकः शिष्योऽति मूर्खः। स एकदा गुरुणा घृततैलानयनाय हट्टे प्रेषितः। तेन तदर्थमेकमेव धूपकडुच्छकं गृहीतम्। तेन कस्यचिद् वणिजो हट्टे मूल्यमर्पयित्वा घृतमेकस्मिन् पक्षे प्रथमं क्षेपितम्। पुनस्तैलं विपर्ययं कृत्वा द्वितीयपक्षे क्षेपितम्। एवं मठ्यामागत्य गुरोर्दर्शितं कथितं च—मया घृततैले आनीते स्तः। गुरुणोक्तम्—क्व? शिष्येण धूपदहनस्य विपर्ययं कृत्वा दर्शितम्—इदं घृतमिति। तावता तैलमपि भूमौ पपात। एवं द्वयमपि त्यक्तम्।

७. मोढक नामक शिष्य की कथा

लक्ष्मीपुर नगर में धक्कट नाम का एक जटी था। उसका एक मोढक नाम का अत्यन्त मूर्ख शिष्य था। एक बार गुरु ने घी और तेल लाने के लिये उसे बाजार भेजा। उसने घी-तेल लाने के लिये धूपदानी जैसा एक ही वर्तन लिया और किसी बनिये के घर जाकर एवं मूल्य देकर इस वर्तन के एक ओर पहले घी डाल दिया। फिर उसे उलट कर दूसरी ओर तेल ले लिया। इस प्रकार मठ में आकर उसने गुरु को दिखाया और कहा कि घी और तेल दोनों सामान लाया हूँ। गुरु ने कहा—कहाँ है? तब उसने दिखाया कि यह तेल है। गुरु ने कहा—घी कहाँ है? शिष्यने वर्तन को उलट कर जैसे ही कहा-यह घी है, तब तक वह तेल भी जमीन पर गिर पड़ा। इस प्रकार दोनों सामान जाता रहा।

८. भोजनभट्टशिष्यकथा

मोदकग्रामे सरढको नाम भरटकाचार्यः । तस्य भूयांसः शिष्याः सन्ति । परं, ते न किमपि पठन्ति न च गणयन्ति न च क्रियां कुर्वन्ति । परन्तु निद्रा-वार्ता-विकथादि-तत्परास्तिष्ठन्ति । तथापि तत्रत्यो भृशं मूर्खो लोकस्तद्गुणरञ्जितोऽहमहमिकापूर्वमेतेषां भोजनवस्त्रादि ददाति बह्वादरेण । तेन प्रतिदिनं यथेच्छाहारविहारादिभिस्ते शिष्याः पुष्टवपुषो महिषप्रायाः जाताः ।

तत एकदा तद्ग्रामवासिना ग्रामभट्टब्राह्मणेन वासितविदुषा ग्राम्यकविना बहुयाचनेऽपि किमप्यलभमानेन तान् दृष्ट्वा विस्मयापन्नेन साश्चर्यमेकः श्लोकः पठितः । यथा—

भरटक तव चट्टा लम्बपुट्टा समुद्धा
न पठति न गुणन्ते नैव कव्वं कुणन्ते ।
वयमपि च पठामो किञ्च कव्वं कुणामो
तदपि भुख मरामो कर्मणां कोत्र दोषः ॥

इत्यादि लोकानां पुरस्तात् स सर्वत्र कथयति स्म लोकानामपि चाश्चर्यम् ।

८. भोजनभट्ट शिष्यों की कथा

मोदक ग्राम में सरडक नाम का एक भरटकों का आचार्य था। उसके बहुत शिष्य थे पर वे सब न कुछ पढ़ते थे न गुनते थे और न कुछ कविता करते थे। परन्तु केवल सोने और बेकार की बातों में लगे रहते थे। तब भी यहा के मूर्ख लोग उन लोगों के गुणों से प्रसन्न होकर बाजी लगा कर उन्हें बड़े आदर से भोजन वस्त्र आदि देते थे। इस कारण प्रतिदिन इच्छानुसार आहार-विहार आदि के मिलने से वे शिष्य मोटाकर भैंसे के तरह हो गये।

तब एक बार उस ग्राम के निवासी एक ग्रामपुरोहित एवं ग्राम्य भाषा में कविता करने वाले ब्राह्मणने, जिसे बहुत याचना करने पर भी कुछ नहीं मिलता था, उन्हें देख विस्मित होकर आश्चर्य के साथ एक कविता पढ़ी। कविता यह थी—

भरटक! तब चट्टा लम्ब पुट्टा समुद्धा
न पठति न गुणन्ते नैव कब्बं कुणन्ते।
वयमपि च पठामो किञ्च कब्बं कुणामो
तदपि भुख मरामो कर्मणां कोऽत्र दोषः॥

इस प्रकार यह सब जगह सब लोगों के सामने ऐसा ही कहता था और लोगों को भी बहुत आश्चर्य होता था।

९. मिथ्यादोषारोपणकथा

देवरमण पुरे दिवाकरः पण्डितोऽभूत्। स एकदापि प्राकृतभाषया न वदति स्म। एकदा वर्षाकाले पण्डितोऽपर-पण्डितेन समं ग्रामाद् बर्हिर्देहचिन्तायै गतोऽभूत्। यावता स पण्डितः स्वगृहं प्रत्यागच्छति तावताऽन्तराले मेघः प्रचुरधारा-भिर्वर्षणाय लग्नः। ततः पण्डितः क्लेदनभयात् कस्यचिद् भौतिकस्य मठ्यां प्रविष्टः स्वभावेनापि द्वितीयपण्डितस्योक्तम्-र्वर्षन्ति मेघाः। जटिना तद्वचः श्रुत्वाचिन्ति—नूनमयं विद्वान् मां दृष्ट्वा गुप्तगालिं ददानोऽस्ति। ततो भौतिक उत्थाय पण्डितस्य वस्त्राञ्चले विलग्नो वक्ति–मां गर्दभत्वेन गालिं कस्माद् ददासि ? पण्डितेनोक्तम्–कथम् ? शृणु, वर्षन्ति मेघा इति त्वयोक्तम्। अग्रस्त्वेवं ज्ञायते—यथा–उंघंति निद्रां आचरन्ति मेषा गर्दभा इति मां गर्दभं कुर्वाणोऽसि। पण्डिते-नोक्तम्—मैवं वद। अरे मया स्वभावेनोक्तम्। भौतिको वक्ति—मा कूटं वद। त्वया मम गुप्ता गालिर्दत्ता। राज्ञोऽग्रे चल। एवं कलहं कुर्वाणा लोकैः कष्टेन वारिताः। ततः पण्डितो हृष्टो गृहे जगाम।

९. मिथ्या दोष लगाने की कथा

देवमरण पुर में दिवाकर नाम के पण्डित थे। वे कभी भी प्राकृत भाषा नहीं बोलते थे। एक बार वे एक दूसरे पण्डित के साथ गाँव से बाहर कुछ कमाने के लिये गये थे। वे जैसे ही घर को लौट रहे थे, रास्ते में मेघ बड़े जोरों से बरसने लगे। तब पण्डित भींगने के डर से किसी साधु के मठ में घुस गये और सहज रूप में ही दूसरे पण्डित से कहा—मेघ बरस रहे हैं। उसके वचन को सुनकर उस साधु ने सोचा कि निश्चित ही यह पण्डित मुझे देखकर गुप्त रूपसे गाली दे रहा है। तब वह साधु उठकर और पण्डित के कपड़े के छोर को पकड़ कर बोला—मुझे गदहा कह कर गाली क्यों दे रहे हो ? पण्डित ने कहा—कैसे ? साधुने कहा—सुनो, "वर्षन्ति मेघा" ऐसा तुमने कहा पर इसके आगे का पद तो इस प्रकार का ही होगा—"उंधन्ति निद्रां आचरन्ति मेषा गर्दभा:" तो इस प्रकार तुम मुझे गाली दे रहे हो। पण्डित ने कहा—इस प्रकार मत बोलो। मैंने तो सहज भाव में कहा था। तब फिर साधु ने कहा—झूठ मत बोलो। तुमने मुझे गुप्त रूप से गाली दी है। चलो राजा के पास।

इस प्रकार लड़ते हुए उन दोनो को लोगों ने बड़ी कठिनाई से रोका। फिर वह पण्डित खुश होकर घर चले गये।

१०. छलादिक्षुचौरकथा

मल्लानकग्रामे निस्सङ्गो नाम जटी। आन्ते वयसि वर्तमानो धर्मार्थी सन् न कस्यापि सत्कमदत्तं गृह्णाति। स एकदा पुराद्बहिर्भ्रमन् क्वापि इक्षुवाटके सरसेक्षुदण्डान् दृष्ट्वा जिघृक्षुः सन् ज्ञापनार्थं वाटकमेवमवादीत्। भो वाटक! गृह्णामि त्रिचतुरान् इक्षुदण्डान्। पुनः स स्वयमेवोत्तरयति। गृहाण पञ्चषान्। एवं स्वयमेवानुमतिं लात्वा पञ्चषानिक्षुदण्डान् गृहीत्वा याति। एवं सर्वदा क्रियमाणे धनिकेन चिन्तितम्! को नाम पापिष्ठो मदीयाकावटदिक्षुदण्डान् गृहीत्वा याति। तदद्य प्रच्छन्नीभूय विलोकयामि। इति विचिन्त्य प्रच्छन्नीभूय स्थितः। ततस्तस्मिंस्तथा कुर्वति धनिकः प्रकटीभूय हक्कयामास।[1] ततो जटी वक्ति। भो मा कुपः मा कुपः। अहं सर्वदापि मुत्कला-[2]प्यैवेक्षुदण्डान् गृहीतवान्। धनिकेनोक्तम्। कथम्। तेन स प्रकारः कथितः।

ततो रोषाध्मातेन तेन जटिनं दृढं बद्ध्वा कूपसमीपे च लात्वा प्रोक्तम्—कूप कूप कथय। आश्वेव दापयामि ते त्रिचतुरा डवकिकाः। इत्युक्त्वा बहु दिडम्ब्य वराको मुक्तः शिक्षितश्चातः परमेवं कदापि न कार्यमिति।

---

१. यह देशी शब्द है।
२. यह देशी शब्द है।

१०. छल से ईंख चुराने वाले की कथा

मल्लानक गाँव में कोई निस्सङ्ग नामका जटी (साधु) था। वह वृद्धावस्था में धर्म की भावना से किसी के धन को विना दिए हुए नहीं लेता था। एक बार नगर से बाहर घूमते हुए कहीं पर ईंख के खेत में सरस ईखों को देख कर उन्हें लेने की इच्छा से उसने स्वीकृति लेने के लिये खेत से पूछा—अरे खेत! क्या तीन-चार ईंख ले लूं? फिर उसने अपने से ही उत्तर दिया--हाँ, ले लो पांच-छ। इस प्रकार वह अपने से ही अनुमति लेकर पाँच-छ ईख लेकर जाता रहा। इस प्रकार हमेशा होने पर खेत के मालिक ने सोचा—कौन पापी हमारे खेत से ईख लेकर चला जाता है? तो आज छिप कर पता लगाता हूँ। ऐसा विचार कर वह छिपकर बैठ गया। तब उस जटी के पुनः वैसा करने पर मालिक ने उसे डाटा-फटकारा। तब जटी ने कहा—अरे भाई, कोप मतकरो, कोप मत करो। मैं बिना ? पूछे कभी ईंख नहीं लिया हूँ। खेत के मालिक ने कहा—यह कैसे? फिर जटी ने अपना तरीका बतलाया।

तब क्रोध से भरकर उसने उस जटी को कसकर बाँधा और कूए के पास लाकर बोला—कहो कूप कूप। अभी तुम्हें कूँए में तीन चार डुबकी दिलाता हूँ। ऐसा कह कर और जटी को बहुत बिगड़ कर छोड़ दिया और यह शिक्षा दी कि अब आगे ऐसा कभी नहीं करना।